तुमुल

निकुम्भिला में यज्ञ करते हुए मेघनाद का लक्ष्मण द्वारा वध

तुमुल

कवि

श्रीश्यामनारायण पाण्डेय

Bhawan's Sri Sankaracharya Sanskrit Mahavidyalaya ★ Bharatiya Vidya

58.3

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

१६४८

मूल्य ५.००

Published by
K. Mittra,
at The Indian Press, Ltd.,
Allahabad.

...'s Sri Sankaracha... ...acharya Vidya Mahavidya...
583

Printed by
A. Bose,
at The Indian Press, Ltd.
Banaras-Branch

कवि

प्रार्थना

मार्गशीर्ष कृष्णैकादशी } { कवि

मेरे आराध्य, आप अपरा-परा से भी परे, यौवन-जरा से भी परे रूप और वर्ण से भिन्न, दूर से भी दूर हैं, जहाँ पहुँचने में सूर भी मजबूर हैं। आप की गति, मति क्या नियति भी नहीं पहचान सकती। आपका प्रभाव अप्रमेय है। सारा दृश्य जगत् आप के एक अंश में ही निहित है। आपने अपने तेजःस्वरूप प्रज्वलित अग्नि की ज्वाला से समस्त भुवन मण्डल को व्याप्त कर रखा है। आप ही योगियों के गुप्त रहस्य, ज्ञानियों के परमतत्त्व, अध्यात्म अधिदैव तथा अधिभूत हैं।

हे सर्वेश्वर, आप कालत्रय में समान रूप से विद्यमान हैं। एक रूप, एक रस। आप स्वाहा, स्वधारूप, यज्ञ स्वरूप और योग के बीज हैं। निराकार, साकार, निर्गुण और सगुण। आप आकाश की तरह बाहर-भीतर अव्यक्त व्यक्त दोनों हैं।

हे सर्वात्मन्, आप शाश्वत प्रवाहित हैं, वितत अगम और अगाध। जन्म-मृत्यु दो किनारों के बीच अस्मिता की रेशम डोरी में बँधे साथ ही हम भी बह रहे हैं। न डोरी टूटती है न हम, आप बनते हैं जिस दिन डोरी टूट जायेगी हम, आप बन जायेंगे। प्रवाह से भिन्न कोई भी सत्ता चिरंतन नहीं रह सकती। यही ध्रुव सत्य है। यदि यह सत्य नहीं होता तो कम से कम आपका तो वह मानव शरीर अविनाशी होता, लेकिन ऐसी बात कहाँ है ?

आप भी अपने में विलीन हो गये, और वह लोकवन्द्य आप का मानव शरीर इन्हीं धूल-कणों में कहीं छिप गया। सागर से भिन्न तरंगों का कोई अस्तित्व नहीं।

हे सच्चिदानन्द, निर्माण कहाँ त्रुटियों से अलग है। सृष्टि का प्रत्येक कम्प-गुण दोष, दोनों से निर्मित है। यही आपका सर्जन है, यही रचना। इसी से अनेक पारदर्शियों का अनुमान है कि पीड़ित पृथ्वी के उद्धार के लिए जब आपने अपने अंशों सहित अपना निर्माण किया होगा तो आप भी अपनी इच्छा (नियति) से बँधे रहे होंगे। सृष्टि की प्रतिष्ठा के लिए आपने अपने में भी उन दुर्बलताओं को स्थान दिया होगा जो मानव में स्वाभाविक हैं। यही कारण है कि आपकी असंख्य पवित्र घटनाओं में एक दो ऐसी भी हैं जिन्हें हमारी बुद्धि नहीं समझ पाती। हमारे तर्क अधीर हो उठते हैं।

गो-ब्राह्मणों की रक्षा के लिए, वर्णाश्रम की रक्षा के लिए तथा लक्ष-लक्ष प्राणियों के उद्धार के लिए आपने अभिमानी रावण का तो वध किया लेकिन फूल से भी कोमल जगदम्बा सीता-जैसी सती साध्वी को घर से निकालकर आपने जो कीर्ति कमाई उससे कोटि-कोटि नर-नारियों के हृदय नहीं तिलमिला उठे? गंगा-जल से भी पवित्र देवप्रतिमा से भी पूज्य अपने श्रीचरणों के स्पर्श से अहिल्या का तो उद्धार किया लेकिन सूर्पणखा की नाक क्यों कटी? राक्षसी ही सही, थी तो नारी। तपस्वियों के अमित्र दुश्चरित्र खर और दूषण जैसे दुर्द्धर्ष रणांकुरों को मारकर आपने समस्त राक्षसों पर जिन बाणों का आतंक जमाया, उन्हीं बाणों से तरु-झुरमुट में छिपकर तारापति बालि का वध ठीक है?

मेरे प्रभो, भक्त की धृष्टता क्षमा हो इन्हीं घटनाओं के पेट में एक घटना और है वह है मेघनाद-वध। लंकेश-पुत्र अपराजेय मेघनाद की वीरता, दुर्दमनीय साहस और अदम्य उत्साह से कौन परिचित नहीं था। युद्ध में उसकी ललकार सुनकर किस अहम्मन्य वीर के पैर नहीं उखड़ जाते थे। यम, अग्नि, वरुण, कुबेर और इन्द्र आदि सभी ने तो उसकी अधीनता स्वीकार कर ली थी। उसके हुंकार से और तो और काल का भी कलेजा काँप उठता था। वह अप्रतिम शक्तिमान था उसकी शक्तियाँ अप्रमेय थीं।

अशोक-वाटिका में उछलते कूदते हुए महावीर बजरंग बली को उसी ने बाँधा था, सारी बानरी सेना को ध्वस्त करके वीरकुमार लक्ष्मण को उसी ने धराशायी किया था और समस्त सैन्यबल के सहित आपको भी नागपाश में उसी ने बाँधकर ललकारा था। याद है? इसी से कहता हूँ कि उसमें तपसा अर्जित बल था, तपःपूत कौशल था और तपस्या से ही प्राप्त की हुई माया थी।

उस वीर योधा के वध की वह नीति जिसको विभीषण ने समझाकर आपकी स्वीकृति ले ली थी, मेरे ही हृदय में शंका नहीं उत्पन्न करती बल्कि मेरे-जैसे आपके लाखों भक्तों के हृदय में यह सन्देह उठा करता है कि मेघनाद-वध में युद्ध-कला-कौशल का प्रदर्शन नहीं हो सका। यह बात दूसरी है कि आपके भजन-कीर्त्तन की पवित्र कीर्ति-गंगा में ऐसी कितनी शंकाएँ बह जाती हैं, उनका पता भी नहीं लगता। लेकिन वास्तविक बात तो यही न है कि निकुम्भिला पर यज्ञ करते हुए निरस्त्र मेघनाद पर शस्त्र चलाया गया। होतृ-समाज के सहित उसका वध किया गया, यज्ञ विध्वंस किया गया, सुलोचना जैसी पतिव्रता

नारी की माँग धोई गई, सुहाग छीना गया। यह सब किसलिए, इसीलिए न कि सती सीता का उद्धार हो। हाय, विभीषण के हठ से सती सुलोचना आपकी दया का पात्र न बन सकी। भगवन्, क्या यह सर्वथा सत्य है कि शरणागतों पर अत्यधिक कृपा करनेवालों के हृदय में दुर्बलता घर कर लेती है। उनमें पक्षपात हो जाता है। यज्ञ स्वरूप, आपका अवतार तो यज्ञ की रक्षा के लिए न हुआ था? तो मेघनाद का यज्ञ, यज्ञ न था? माना कि अर्थार्थी का यज्ञ था, तो ज्ञानी कब यज्ञ करता है? उसको यज्ञ से क्या प्रयोजन, यज्ञ कर्म भी तो बन्धन ही हैं। और अर्थार्थी की क्या भक्तों में गणना नहीं है? यदि अर्थार्थी भक्त भी भक्त है, तो क्या वह उपेक्षित हैं?

अव्यक्त, आप के रहस्य के द्वार बन्द के बन्द ही रह गये, न खुले! न खुले!! यदि खुले होते तो विश्व में अगणित विश्वासों का जन्म ही क्यों होता। क्यों एक विश्वास दूसरे विश्वास की भर्त्सना करता, जिज्ञासुओं की भावनाओं को क्यों आघात पहुँचता। अनेक विश्वासों की सिद्धि ही यह सिद्ध करती है कि रहस्य आवृत है। अभेद्य अन्धकार बीहड़ पथ के उस पार बहुत दूर कहीं कोई सत्य होगा। जिसका ज्ञान जन्म मरण में घूमनेवालों को नहीं होता। यह निर्विवाद है। जो रहस्य अद्यावधि प्रकाश में आया ही नहीं उसको बुद्धि अनुमान और तर्क के बल पर कुछ निश्चित करना दूसरों की तरह अपना भी उपहास कराना ही होगा। इसलिए उसके बारे में मौनावलम्बन ही ठीक है।

लोकवन्द्य, यह तो सत्य ही है कि लोकरावण रावण के दुष्कर्मों का फल मेघनाद को भी भोगना पड़ा। जगद्वन्द्य सती सीता की आह से ही सुलोचना की माँग जल गयी।

केवल यही नहीं एक दुश्चरित्र रावण के निन्द्य अभिमान और नृशंस व्यवहार के कारण आपकी क्रोधाग्नि में सारा दनुजवंश ही स्वाहा हो गया। पृथ्वी से पौलस्त्य कुल का उच्छृङ्खल शासन ही उठ गया।

लोकप्रिय नायक, यह सब होते हुए भी आपके पक्ष में एक तर्क बहुत प्रबल है। वह यह कि मेघनाद को मारने में आपने जिस नीति से काम लिया, वह दिव्य भले ही न हो लोकनीति में तो सन्देह ही नहीं है। यदि आप उस अपराजेय को किसी तरह पराजित नहीं करते तो आपकी विजय लंका के कनकदुर्ग पर कठिन हो जाती। दुर्दान्त मेघनाद की प्रचण्ड वीरता के सामने आपकी बानरी सेना डटी रहती इसमें सुरासुर सबको सन्देह था। न वह अपनी पितृ-भक्ति छोड़ता न रामराज्य की स्थापना होती। लोकैषणा शान्ति चाहती थी मेघनाद का शौर्य्य नहीं। इसलिए किसी तरह उसको मारना किसी भी लोककल्याण के लिए चिन्तित व्यक्ति को अनिवार्य था। एक के निधन का पाप अनेक के कल्याण के पुण्य-प्रकाश-पुञ्ज में विलीन हो जाता है। यह सब तथ्य है, पुण्य है। लेकिन यह भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि अपने-अपने स्थान पर दोनों का अस्तित्व दुर्निवार्य है। इसीलिए भावुकता उमड़ पड़ी और कुछ कह गया। मेरे कथन की सत्यता पर आपकी भी अस्वीकृति नहीं हो सकती।

निराकार, नियति के बन्धन तोड़कर साकार होकर मेरे झुके हुए मस्तक पर हाथ फेरते हुए बोलें तो 'हाँ'। आपके परमपूज्य श्री चरणों में मुझ अकिंचन का शत-शत वन्दन।

... ...

ऊपर की बातों से पाठकों को यह स्पष्ट हो गया होगा कि पुस्तक में क्या है। रामलीला के अवसर पर जीवन

के प्रभातकाल से ही लक्ष्मण और मेघनाद के युद्ध देखने में अधिक रस लेता था। उन दोनों भयंकर वीरों के तुमुल संग्राम मुझे अपनी ओर खींच लेते थे। इसलिए साहित्य में प्रवेश करते ही मैंने सर्वप्रथम 'त्रेता के दो वीर', नामक खण्ड काव्य लिखा, जिसमें मैंने उन्हीं दोनों वीरों के युद्ध का वर्णन किया। उसी पुस्तक का संवर्धित एवं संशोधित संस्करण 'तुमुल' नाम से है। पुस्तक-नाम इसलिए बदल दिया कि पहला नाम मुझे अधिक अक्षरों-वाला लम्बा तथा असाहित्यिक मालूम हुआ।

आज अपने पाठकों के सामने अपनी पहली कृति को सँवारकर रखते हुए उतना ही प्रसन्न हो रहा हूँ जितना कोई उदीयमान नवीन कवि अपनी पहली रचना को प्रकाशित देखकर होता है। क्योंकि इसके अक्षर-अक्षर में उस समय की अनेक मधुर-तिक्त घटनाएँ प्रच्छन्न हैं जिनसे मुझे गति और अवरोध दोनों मिलता था। अन्त में यह विश्वास करते हुए कि 'त्रेता के दो वीर' का यह नवीन संस्करण 'तुमुल' पहले से अधिक पाठकों का मनोरंजन कर सकेगा उन सभी विद्वानों और महाकवियों को धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने उस समय मेरी प्रथम कृति पर अपनी अमूल्य सम्मतियाँ देकर मुझे प्रोत्साहित किया था।

शुभम्

अलख वही है वही महान

जिसने नभ को नील बनाया,
उसपर तारों को चमकाया।
जिसने रवि में रूप दिखाया,
जिसने सोया चाँद जगाया॥

वही सिद्धि है, वही साध्य है, वही साधना का वरदान।

पेड़ों में हरियाली जिसकी,
ऊषा में है लाली जिसकी।
निशि अलकावलि काली जिसकी
आसमान है थाली जिसकी॥

वही भक्ति है, समाराधना, वही भावना का भगवान।

पावक बन जलता रहता जो,
मारुत बन चलता रहता जो।
सागर बन बहता रहता जो,
छिति पर सब सहता रहता जो॥

वही एक रस, एक रूप है, जड़ चेतन का वही निदान।

फूलों में मुसकाता जो है,
कवि के स्वर में गाता जो है।
दाता जो है, त्राता जो है,
माता, पिता, विधाता जो है॥

उसी देवता के चरणों पर मेरे मस्तक का अभिमान

—:o:—

देवि,

हम दो प्राणियों को एक सूत्र में बाँधनेवाली, हम दोनों के सुख की लक्ष्य-भूमि, हम दोनों के भविष्यकी साँस, संसार की सबसे करुणाजनक सन्तान मातृहीन 'शर्मदा' !

उस दिन जब अचानक महामारी के भयंकर मुँह में चली जा रही थी तब हम दोनों की क्या दशा थी, याद है ? तुम मुझे समझा रही थीं, तुम्हारे दृढ़ शब्दों की वह सान्त्वना, वह आत्मबल, वह विश्वास । लेकिन स्वयं नहीं समझ रही थीं । बाहर, सूखी किन्तु तीक्ष्ण आँखों में भयंकर चमक थी और भीतर हृदय चिता की तरह धधक रहा था, कलेजा फटा जा रहा था और पंछी उड़ने के लिये पंख फड़फड़ा रहा था ।

जब मैं अपनी नन्हीं 'शर्मदा' को अपने हृदय के समान ही शिलाखण्ड में बाँधकर सावन की गंगा की गम्भीर उर्मियों में अकेले ही छोड़ आया, तब तुम भी वहीं जाने के लिये उतावली हो उठीं । तुम्हारी गति की वह तीव्रता और हमारे प्राणों की वह विवशता । हाय, चार दिन में ही सब समाप्त ।

मेरी 'सरस्वती',

वचनबद्ध होकर भी 'शिवाजी' के निर्माण काल तक मेरे साथ नहीं रह सकीं तो लो, यह 'तुमुल' ही स्वीकार करो ।

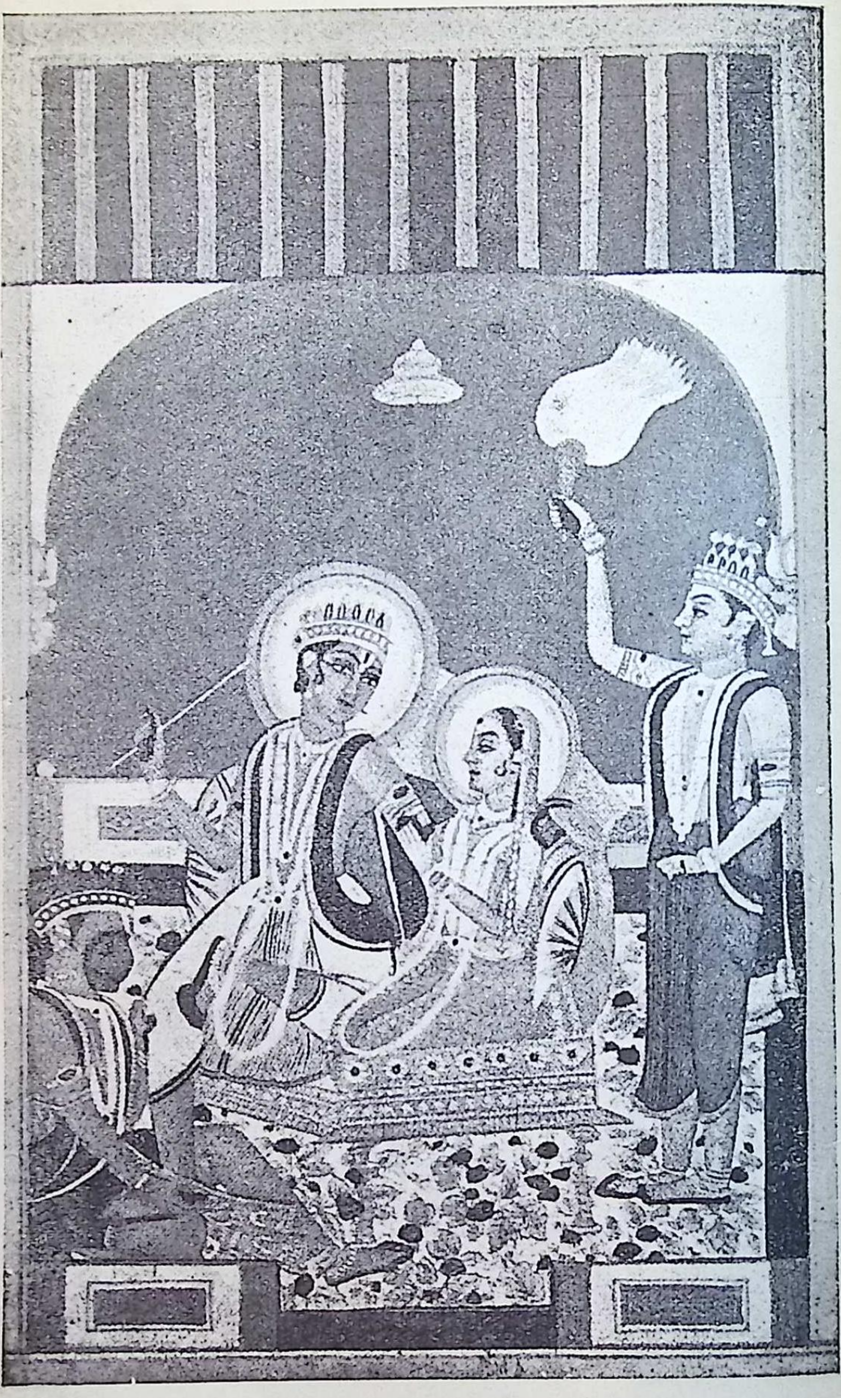

श्री सीताराम

इच्छा सुतेच्छु दुखी पिता
की पूर्ण करने के लिये।
ऋषि सज्जनों के हृदय का
दुख-दैन्य हरने के लिये॥

हुंकार से रजनीचरों का,
बल घटाने के लिये।
सत्कर्म से इक्ष्वाकु-कुल का
यश बढ़ाने के लिये॥

देते हुए आनन्द सबको-
तेज दिखलाते हुए।
सत्कार वृन्दारक तथा
मुनिवृन्द से पाते हुए॥

जन्मे स्वकुल में क्षीर निधि में,
चन्द्रमा के तुल्य ही।
माता सुमित्रा को मिला था,
एक लाल अमूल्य ही॥

पूजक सनातन ब्रह्म के-
आनन्द से विह्वल हुए।
चंचल मही के खल हुए,
निर्बल जनों के बल हुए॥

निर्जीव तन के जीव प्यासी-
भूमि के हित जल हुए।
साध्वी सती कुल नारियों-
के पुण्यतम अंचल हुए॥

साकेत-सागर-रत्न, माँ के-
प्राण रघुनन्दन हुए।
दीनों गरीबों के लिये-
भगवान रघुनन्दन हुए॥

अपने पिता के उच्चतम
अभिमान रघुनन्दन हुए।
कुल - कंज - कानन के लिये
भास्वान रघुनन्दन हुए॥

सब भाइयों के साथ माँ के
अंक में आने लगे।
मुसकान से किलकान से
पीयूष बरसाने लगे॥

अनुराग से दशरथ निरन्तर,
प्यार दिखलाने लगे।
कह शेष भी सकता न-
कितना देव सुख पाने लगे॥

इक्ष्वाकु कुल अनिमेष-
ब्रह्मानन्द ही पाने लगा।
उत्साह से उनके सुयश का
केतु फहराने लगा॥

राजेन्दु-सुत बालेन्दु के सम,
प्रति दिवस बढ़ने लगे।
होने लगे तत्त्वज्ञ श्रम से
रात दिन पढ़ने लगे॥

वेदादि के ज्ञाता हुए भ्रम
और संशय खो गये।
सर्वज्ञ कोई हो सका वैसा
न जैसा हो गये॥

अपने विकारों को लगन
के साथ करते ध्वंस थे।
अज-वंश के अवतंस,
मानस-मानसर के हंस थे॥

दशरथ-अजिर की चाँदनी से
पतन था अपकर्ष का।
सानन्द चारो ओर उड़ता
था फरेरा हर्ष का॥

इक्ष्वाकु-कुल के राज भर में,
नाम था न अमर्ष का।
पैदा हुए साकेत में,
सौभाग्य भारतवर्ष का॥

निशिदिन क्षमा में क्षिति बसी,
गम्भीरता में सिन्धु था।
था धीरता में अद्रि, यश में,
खेलता शरदिन्दु था॥

थी बोल में सुन्दर सुधा,
उर में दया का वास था
था तेज में सूरज, हँसी में,
चाँद का उपहास था ॥

कर्त्तव्य कर-कर भर दिया,
पीयूष अपने नाम में।
घुल से गये प्रत्यक्ष ही साकार
सीता - राम में ॥

अपमान करते दानियों का,
दुर्बलों को दान दे।
कुलधर्म-रक्षा का विषय
नित सोचते थे ध्यान दे ॥

करते निराले कर्म जिससे,
देश भर का त्राण हो।
करते वही जिससे महीतल,
का सदा कल्याण हो ॥

कोदण्ड विद्या में निपुण,
चौंसठ-कला-मतिमान थे।
संहार में वे सर्वथा भीषण
कृतान्त - समान थे ॥

शस्त्रास्त्र में अपने सदृश
वे आप ही थे लोक में।
उनके विमल यश की ध्वजा,
उड़ती रही सुरलोक में॥

रण ठान के जिससे भिड़े,
उससे विजय पाई सदा।
संग्राम में अपनी ध्वजा,
सानन्द फहराई सदा॥

जग-गहन के गजराज, गति में,
तीर थे, रणधीर थे।
कोई न करता सामना वे
विदित-वज्र-शरीर थे॥

थे वार वार उतारते
ऋषि लोग उनकी आरती।
सद्बुद्धि को अवलोक कर
लेती बलैया भारती॥

नीतिज्ञ-विज्ञ, गुणज्ञ, ज्ञाता,
सच्चरित्र उदार थे।
वे शेष के अवतार सचमुच,
भूमि के आधार थे॥

थे कान्ति के आगार
सब सुखशान्ति के भाण्डार थे।
रखते बड़े छोटे सभी के
साथ सम व्यवहार थे॥

उपकार करके भी उन्हें,
होता नहीं सन्तोष था
उनके हृदय का भाव कितना
पुण्यतम निर्दोष था॥

उनको न अपने दिव्य यश के
गौरवों का गर्व था।
ऐसे महात्मा से जगत-हित
क्यों न होगा सर्वथा॥

पर दुःख से उद्विग्न, सुख से
मग्न होते हर्ष में।
ऐसे जनों का सर्वदा हो
जन्म भारतवर्ष में॥

—:०:—

निशाचरेश पुत्र था,
जयन्त इन्द्र के यथा ।
सपूत मेघनाद था,
अभूत मेघनाद था ॥

प्रशस्त संयमी शमी,
प्रगल्भ धीर विक्रमी ।
अपार ज्ञानवान था,
महा प्रतापवान था ॥

बड़ा उदात्त-वृत्त था,
वली उदार-चित्त था।
प्रबुद्ध था, महान था,
विशेष शीलवान था।

महारथी प्रसिद्ध था,
गुणी विवेक - वृद्ध था।
सुदेश था, सुकेश था,
नितान्त रम्यवेष था॥

समस्त सर्पराज को,
तथा फणी-समाज को।
परास्त शीघ्र ही किया,
महादुखी बना दिया॥

महावली सुरेश को,
जयन्त वीरवेश को।
समीक में हरा दिया,
त्रिलोक को कँपा दिया॥

प्रसिद्ध और भी हुआ,
नितान्त गौरवी हुआ।
स्वतन्त्र भूप भी डरे,
न जो कहीं कभी डरे॥

महान तेजमान था,
दिनेश के समान था।
उसे न रोकता कभी,
महा कराल काल भी॥

कहीं मिला न एक भी,
महावली उसे कभी।
सगर्व जो खड़ा रहे,
समीक में अड़ा रहे॥

समस्त धीर सारथी,
समानधी महारथी।
विमान देख ही भगे,
विपक्ष विग्रही भगे॥

अड़ा, लड़ा, उड़ा कहीं,
महावली, मुड़ा कहीं।
उदग्र काँप से गये,
विनाश भाँप से गये॥

न सूर था, न चन्द्र था,
न देव ही अमन्द था।
परन्तु जो रव में छिपा,
त्रिलोक ओक में छिपा॥

—:o:—

ॐ

रघुवीर ने अरिवृन्द को,
कर शर प्रहार भगा दिया।
भगते हुए रजनीचरों का,
दूर तक पीछा किया॥

बहु धीर जो बनते रहे,
वे राम से मारे गये।
उनके करों द्वारा करोड़ों,
वीर संहारे गये॥

संग्राम में मारा गया,
लड़ता हुआ मकराक्ष भी।
रघुनाथ के नाराच के,
भय से भगे निशिचर सभी॥

इस वृत्त को सुनकर दशानन,
और भी उनसे डरा।
बढ़ते हुए दुख वेग से,
सारा हृदय उसका भरा॥

कुछ देर चिन्ता मग्न होकर
क्षुब्ध ज्यों का त्यों रहा।
मम प्राण प्रिय मकराक्ष,
हा, अब है कहाँ फिर यों कहा॥

खोने लगा सर्वस्व उसके
शोक में रोने लगा।
अति पीतभूत कपोल को,
नयनाम्बु से धोने लगा॥

अस्त हो गया हा हन्त देश का दिनेश आज,
अरमान के सुमन तोड़ के चला गया।
सबको बना के दीन, दे के दुख-दैन्य-दान,
दीन दुनिया से मुँह मोड़ के चला गया ।।

'श्याम' छा गई है विपदा की घनघोर घटा,
विकल बना के सब छोड़ के चला गया।
विलख रहे हैं हम लोग देखने के लिये,
नाता मकराच्च, अब तोड़ के चला गया ।।

है मर गया मकराक्ष पर,
शव रूप में वह है कहाँ।
है प्राण-हीन कहाँ पड़ा,
कोई उसे ला दे यहाँ॥

किस रूप में वह आज है,
कैसे उसे देखूँ यहाँ।
कैसे व्यथा यह दूर हो,
हा, दैव मैं जाऊँ कहाँ॥

जिस वक्त्र से था फूल झड़ता,
शूल उसमें है लगा।
ताम्बूल से था लाल जो मुख,
रक्त से वह है पगा॥

लाचार हूँ हा हन्त, कैसे,
धैर्य्य मैं धारण करूँ।
ऐसा प्रतिक्षण क्रोध होता
है कि जाके रण करूँ॥

संग्राम करना किन्तु मेरा,
सर्वथा ही व्यर्थ है।
उन युग भटों को मारने में
मेघनाद समर्थ है॥

मेरे समान महावली
रण में विचक्षण धीर है।
प्रत्यक्ष काल समान वह
दुर्द्धर्ष है वर वीर है॥

मम सुत षडानन से नहीं है,
युद्ध में डरता कभी।
उससे समर करके पराजित
हो गये हैं इन्द्र भी॥

नागेन्द्र का कम्पित किया,
कर स्वार्थ-साधन यश लिया।
उसकी अपार कदर्थना कर
तेज हत उसको किया॥

—:o:—

तनय के तन का बल सोच के,
परम निर्भय दुर्जय जान के।
असुर भूल गया मकराक्ष को,
नियति का यह रूप विचित्र है ॥

पल रहा जन प्यार दुलार से,
उठ गया, जग भूल गया उसे।
दिवस के निशि के परदे पड़े,
समय भी कितना बलवान है ॥

कुछ घड़ी कर मंगल-कल्पना,
कुछ घड़ी रह मग्न विचार में।
यह किया निश्चय दशकन्ध ने,
समर-शासन दूँ घननाद को॥

मरण को सुन के मकराक्ष के,
विपुल आकुल है प्रिय पुत्र भी,
इसलिये यह है मम धारणा,
विजय-भूति उसे मिल जायगी॥

जनक को बहु पीड़ित जान के,
परम चिन्तित दुःखित मान के।
जलदनाद वहाँ पर आ गया,
समर-शूर दशानन पा गया॥

चरण छू कर से दशकन्ध का,
तदनु बैठ गया बहु नम्र हो।
सदन को द्युतिमान बना दिया,
निज विशाल ललाट प्रकाश से॥

सकल वीर उसे लखने लगे,
विलखने दुख में पगने लगे।
फिर सभी सँभले मुख देख के,
परम वीर महाबल लेख के॥

समर-धीर अपार पराक्रमी,
निज बली सुत को अवलोक के।
दुखित होकर रावण ने कहा,
बलवती अति है उर की व्यथा॥

—:o:—

हे पुत्र, क्यों होते तुम्हारे
है दशा ऐसी हुई।
यह जानते ही हो सुवन की
दुर्दशा जैसी हुई॥

सारा दनुज का वंश ही,
कँपता दिखाता आज है।
हलचल मची है राज में
अस्थिर हुआ अधिराज है॥

क्षण-क्षण सदा तुझसे बहुत ही
थरथराते वीर थे।
सम्मुख न आते थे समर से
भागते रणधीर थे॥

यह जानता हूँ मैं न, जानें,
शम्भु कैसी बात है।
मेरे नगर में किसलिये यों,
हो रहा उत्पात है॥

जो हो परन्तु न युद्ध से
हे पुत्र, हटना चाहिये।
निज वैरियों के सामने
तत्काल डटना चाहिये॥

अरि-वृन्द का उत्थान लखकर
बैठ रहना व्यर्थ है।
बदला न लेना राम से,
अतिशय अधर्म अनर्थ है॥

अतएव मेरी है यही आज्ञा,
सुनो, तुम ध्यान से।
मैं कर रहा हूँ जो कथन
उसको करो जी जान से॥

रण में सुला दो हे सुवन,
सौमित्रि से बलधाम को।
जाओ, लड़ो शर शूल लो,
निज बल दिखा दो राम को॥

मैं जानता हूँ रण जलधि को,
पार है तुमने किया।
निज वीरता का विपुल यश,
सुरलोक तक फैला दिया॥

हे तात, तेरी शक्तियों का,
अन्त है मिलता नहीं।
घमसान में भी पुत्र तेरा,
बाल तक हिलता नहीं॥

यों ही रुला दो निर्जरों को,
ठानता रण व्यर्थ है।
तुझसे करे संग्राम ऐसा,
कौन शूर समर्थ है॥

रण में भगा दोगे सभी को,
यह मुझे विश्वास है।
तव प्राण रन्ध्रों में विजय का,
चल रहा निःश्वास है॥

पर देखना निर्भीक रहना,
हर घड़ी रण क्षेत्र में।
प्रायः अचानक मारना,
शर शत्रुओं के नेत्र में॥

अति त्रस्त करना, गरजना,
कपि वृन्द-कर्ण विदार के।
हे शूर सुत, तुम लौटना,
अरि वाहिनी संहार के॥

रण रीति जो मैंने बताई,
भूल मत जाना उसे।
पाना परम आनन्द असि ले,
शत्रु-सेना में घुसे॥

रिपुदल गहन का दहन बनना,
निज प्रखरतर तेज से।
सुत सुयश पाना समर-भू-नभ-
में विभाकर सम लसे॥

डंका विजय का हे तनय,
जब युद्ध में बज जायगा।
जब देख के विजयी तुझे,
आनन्द अन्तर पायगा॥

तब इस नगर की दुर्दशा,
फिर राम से होगी नहीं।
वे हैं जहाँ जैसे पड़े रह-
जायँगे वैसे वहीं॥

हे पुत्र, जा, जा अब न तुझको,
देर करना चाहिये।
अरि-दल-दलन कर समर में,
सुख से विचरना चाहिये॥

मकराक्ष का बदला विजय के-
साथ लेना चाहिये॥
कपि वृन्द को खरतर विशिख-
से वेध देना चाहिये॥

ये वचन कहकर मौन,
लङ्काधीश ने धारण किया।
मानो किसी ने छेड़ करके,
सुप्त सिंह जगा दिया॥

आज्ञा पिता की मानकर
बोला पयोद-निनाद यों।
उद्दीप्त होकर कड़कती,
सौदामिनी घन मध्य ज्यों॥

—:०:—

६

उसके गरजने से कनक का,
गेह भी हिलने लगा।
दृढ़ता वचन सुन-सुन,
दशानन का हृदय खिलने लगा॥

जो वीर बैठे थे वहाँ वे,
एक टक लखने लगे।
उत्साह से भर हाथ निज निज,
मूँछ पर रखने लगे॥

तेज में विभाकर समोद-
खेलता है सदा,
मुख में पवित्र वर वाणी,
का निवास है।

उर में उमेश रमा करता,
पवित्रता से,
हास में मनोहर,
मयङ्क का निवास है॥

शक्ति में सदैव स्वयं
शक्ति ही विराजती है,
देवी देवता का रोम-
रोम सहवास है,

पितृदेव, आपको विनीत,
अभिवादन है,
आपके शरीर में
त्रिदेव का विलास है॥

बल की प्रचण्डता से
हो गया प्रमत्त तो भी,
जम्बुक - समाज - मृग-
राज का करेगा क्या।

BVBSSMV

कर दे तयारी यदि,
युद्ध करने के लिये,
खग का समूह खग-
राज का करेगा क्या।

चमक दमक कर गिर-
जो पड़े तो कहीं-
शस्त्र समुदाय एक-
राज का करेगा क्या।

लड़ने न आता जिसे,
एक पैतरा भी कभी,
लङ्का के महीप अधि-
राज का करेगा क्या॥

प्राची में प्रचण्ड जब-
भानु का उदय होता,
क्या मजाल है कि
तम विश्व से हटे नहीं।

तेज तलवार लगे काटने
कठोरता से,
केले का समूह कौन,
है कि जो कटे नहीं॥

583

वेग से भयानक झकोर,
उठे झंझानिल,
शक्ति क्या घटा में,
टूक टूक जो फटे नहीं ॥

मेरे अभिमान पर,
धिक है सहस्र वार,
रीछ वानरों से आज,
भूमि जो पटे नहीं ॥

चाँहू तो फरेरा फहरा
करे खमण्डल में,
चाँहू तो कुलावा
मही व्योम का मिला दूँ मैं।

एक ही निमेष में,
युगों को बरबाद करूँ।
चाहूँ तो मयंक-सूर,
को भी तोड़ ला दूँ मैं ॥

वार पर वार हो रहा है-
वानरों का किन्तु,
एक ही लपेटे में,
कलेजा दहला दूँ मैं।

चाहूँ तो उखाड़ दूँ,
उभाड़ दूँ रसातल को,
सिंह सी दहाड़ से,
पहाड़ को हिला दूँ मैं ॥

मेरे क्रोध की कराल,
वह्नि जो भभक उठे,
अम्बर धधक उठे,
भस्म हो शिवा-कुटी ॥

विष से बुझी जो तल-
वार लहरा के उठे,
देखें, फिर विधि को,
विधानता लुटी लुटी ॥

धर के दबा दूँ तो-
महीधर चरक उठे,
दर से गिरीश की,
दरक उठे त्रिकुटी,

लरक उठे भूमि-
खमण्डल खरक उठे,
पितृदेव, मेरी जो,
फरक उठे भृकुटी

यों बोल के शक्ति सगर्व ले ली,
दो हाथ तीखी तलवार खेली।
तो भी मुखश्री न खिली पिता की,
बोला पुनः काँप गये पिनाकी ॥

हे तात, यों आप कभी न रोवें,
शोकाग्नि से दग्ध कभी न होवें।
जो आप का कष्ट नहीं हरूँगा,
तो मैं न को दण्ड कभी धरूँगा ॥

मैं राम के सम्मुख हो लड़ूँगा,
जाके सभी का शिर काट दूँगा।
सौमित्रि का भी बल देख लूँगा,
लंकापुरी का दुख मैं हरूँगा ॥

झूठे तने हैं अभिमान से वे,
क्या हैं भला सम्मुख बाण के वे।
दूँगा गिरा मैं उनको शरों से,
पाला पड़ा है न भयंकरों से

दूँगा बहा भीषण रक्त-धारा,
होगा महा कम्पित विश्व सारा।
नाराच से मूर्च्छित कीश होंगे,
आघात से व्यस्त अनीश होंगे ॥

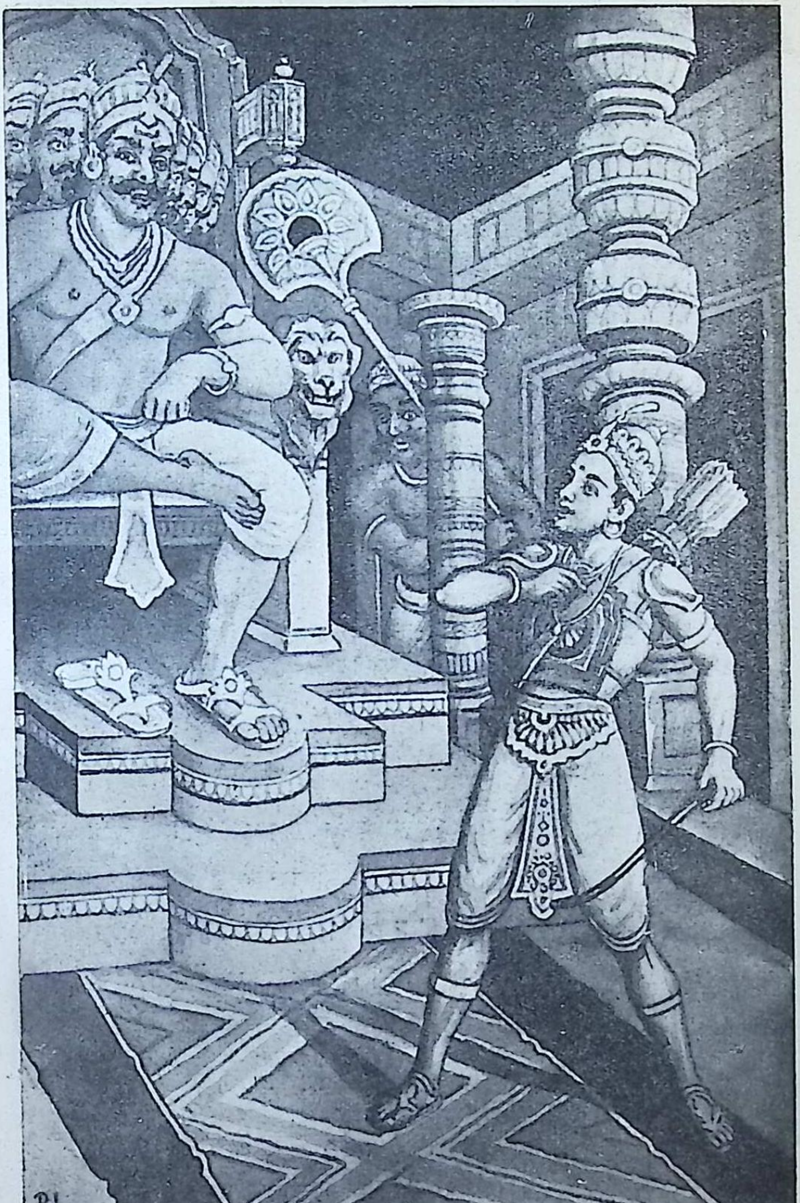

रावण के सम्मुख मेघनाद की भीषण प्रतिज्ञा

कैसे कहूँ आहव-भाव-सारे,
जो हैं छिपे मानस के सहारे।
मैं आप से किन्तु यही कहूँगा,
संग्राम में मैं विजयी बनूँगा ॥

आकाश में भी यदि वास लेंगे,
तो भी नहीं शत्रु कभी बचेंगे।
पाताल में जाकर जो छिपेंगे,
तो भी नहीं रक्षित हो सकेंगे ॥

मेरे शरों को न बचा सकेंगे,
शूली स्वयं भी मुझसे डरेंगे।
थर्रा उठेंगे सुरलोक-वासी,
छा जायगी श्री मम भानु-भा-सी ॥

मैं सिंह के तुल्य खड़ा रहूँगा,
मैं युद्ध के मध्य अड़ा रहूँगा।
मैं वाहिनी का कर नाश दूँगा,
हे तात, मैं अल्प नहीं डरूँगा ॥

लेंगे न देख मम नेत्र अड़ा किसी को,
दूँगा सगर्व रहने न खड़ा किसी को।
संग्राम में यदि न मैं विजयी बनूँगा,
तो युद्ध का फिर न नाम कदापि लूँगा ॥

—:०:—

७

उन्मन पिता को धैर्य्य दे,
जब सदन को चलने लगा।
दुख देख जब लंकेश का
क्रोधाग्नि से जलने लगा॥

घननाद के संरम्भ से तब,
लोग दुख पाने लगे।
उस काल सब अमरावती के
देव थर्राने लगे॥

करने लगा धकधक हृदय,
चिन्ता उरों में छा गई।
लंकेश-सुत के हाथ मानो,
मृत्यु सबकी आ गई॥

सर्वत्र अतिशय त्रस्त होकर,
लोग घबड़ाने लगे।
जो थे कहाते धीर वे भी,
काल-भय पाने लगे॥

जिस भाँति प्राची में विभाकर,
प्रथम होता लाल है।
लगता बिछाने मेदिनी पर,
फिर किरण का जाल है॥

उस भाँति उसका क्रोध द्वारा,
लाल मुख था हो गया।
मानो दशानन लाल का मुख,
काल-मुख था हो गया॥

होने लगे भयभीत मारुत,
अद्रि भी हिलने लगे।
उस वीर के हुंकार से,
तरु आप ही गिरने लगे

प्रत्यक्ष तेज प्रवेश उसके
बदन में करने लगा।
होने लगी शंकित धरा,
भास्वान भी डरने लगा॥

किस भाँति अपने शत्रु से
संग्राम करना चाहिये।
किस यत्न से किस तरह
अरि का दर्प हरना चाहिये॥

कैसे प्रतिज्ञा राम के
संहार की होगी सही।
यह सोचता घननाद अपने
गेह पहुँचा शीघ्र ही॥

उसने वहाँ कवचादि धारण
वीरता पूर्वक किये।
संग्राम करने के लिये
कोदण्ड शर भी ले लिये॥

सेना-समीप चला गया
सामन्त-दल डरने लगा।
अवलोक सेनापति उसे
कँपकर वचन कहने लगा॥

जो हैं हुए अपराध उनको
विश्ववीर, क्षमा करें।
निज रोष अपनी बुद्धि से
कर शान्त रंच दया करें॥

क्या॰ क्रोध करने का महोदय,
हेतु है बतलाइये।
मैं जानता कुछ भी नहीं हूँ,
इसलिये ज़तलाइये॥

है कौन जन जिसके लिये
सन्धानना शर को पड़ा।
वह ज्ञात होता विक्रमी
पर बुद्धि का निर्बल बड़ा॥

जो हो परन्तु सरोष उससे,
युद्ध जायेगा किया।
उसका पलायन-पन्थ अब
अवरुद्ध जायेगा किया॥

आदेश दें तो आज ही
संसार का संहार दें।
जिसके लिये तैयार हैं
उस दुष्ट को भी मार दें॥

हम लोग देंगे प्राण रण में,
आप के हित के लिये।
केवल वरद कर चाहते हम
शीश पर नित के लिये।

सबमें अमित अवलोक करके
धीरता गम्भीरता।
संग्राम का उत्साह पाकर
और भीषण वीरता॥

आदेश सेनप को दिया,
स्यन्दन सजाने के लिये।
रण वाद्यकारों से कहा,
बाजे बजाने के लिये॥

उत्साह से रण के लिये,
सब सूरमे सजने लगे।
बहुनाद करके वाद्य रण के
कोटिशः बजने लगे॥

लंका नगर के वीर आशा,
विजय की करने लगे।
होने लगे शुभ शकुन
कायर लोग अति डरने लगे॥

अवलोक कर तैयार सबको
युद्ध करने के लिये।
उसने विचार किया, मुझे
मख प्रथम करना चाहिये॥

दक्षिण गई ज्वाला, किया
क्रतु साथियों के साथ में।
दी अग्नि ने मानों लवर से
विजय उसके हाथ में॥

फिर नाद करता व्योम के
पथ से रुचिर स्यन्दन चला।
युद्धार्थ उस पर बैठकर—
दशशीश का नन्दन चला॥

घननाद के साथी सभी थे,
अस्त्र से सज्जित हुए।
यह देखकर वासव सहित
सब देव भी शंकित हुए॥

घननाद के रथ पर ध्वजा थी,
फरफराती वायु से।
अभिमान था अतिशय अधिक
अपनी चपलता का उसे॥

करके अपार प्रकोप अपने,
गात को कम्पित बना।
मानो अमित्रों को बहुत ही,
दे रही थी ताड़ना॥

सेनानियों को देखकर सब,
देव पीले पड़ गये।
कँपने लगे थरथर दशानन,
के तनय से डर गये॥

'कैसे बचेंगे राम' कह,
चिन्ताग्नि से जलने लगे॥
भयभीत होकर सुर परस्पर,
बात यों करने लगे॥

—:o:—

८

सकल निशिचरों का,
तेज है वृद्धि पाता।
क्षण क्षण लड़ने की,
चाह होती उन्हें है॥

अब बच न सकेंगे,
बाण से प्राण देंगे,
दशमुख-सुत द्वारा,
भूमि निर्वीर होगी॥

बढ़कर यदि आवे,
सामने काल तो भी।
वह निशित शरों से,
मार देगा उसे भी॥

बहु बल कल वाली,
राम की वाहिनी भी।
उस अमित बली से,
शीघ्र ही ध्वंस होगी॥

रण तुमुल करेगा,
राम को जीत लेगा।
लखकर उसको तो,
है यही ज्ञान होता॥

अब विशिख रँगेगा,
वेध के वानरों को।
समर वसुमती में,
रक्त-धारा बहेगी॥

वह जब करता है,
वृष्टि बाणावली की।
तब थर थर सारी,
मेदिनी काँपती है॥

सुरपति डर जाते,
शम्भु हैं भीत होते।
शशि दिनकर भी हैं,
धीरता त्याग देते॥

लखकर उसको है,
आज विश्वास होता।
निज अहित जनों से,
सिंह जैसा लड़ेगा॥

लड़कर अभिलाषा,
शीघ्र पूरी करेगा।
अरि-मद हर लेगा,
कष्ट देगा छलेगा॥

रघुपति बल शाली,
वानरी वाहिनी का।
कठिन विशिख पैने,
नाश ऐसे करेंगे॥

जब सहित सबेरे,
फैल के मेदिनी में।
रविकर करते हैं,
ध्वंस जैसे हिमों का॥

इस तरह सुरों में,
बात हो ही रही थी।
निज धनु इतने में,
गर्व से हाथ में ले॥

अभय समर-भू में,
क्रोध से लाल होके।
दशमुख - सुत नेकी,
गर्जना सिंह जैसी॥

—:o:—

सौमित्रि को घननाद का रव,
अल्प भी न सहा गया।
निज शत्रु को देखे बिना,
उनसे न तनिक रहा गया।।

रघुवीर से आदेश ले,
युद्धार्थ वे सजने लगे।
रणवाद्य भी निर्घोष करके,
धूम से बजने लगे।।

अरि साथ लड़ने के लिये,
तैयार क्षण में हो गये।
उठने लगे उनके हृदय में,
युद्ध-भाव नये नये ॥

निज तेज से भास्वान सम,
प्रत्यक्ष ही देखे गये।
उस काल वे मृगराज जैसे,
शक्ति में लेखे गये ॥

अवलोक कर सौमित्रि को
सन्नद्ध आहव के लिये।
सत्वर सहर्ष गदादि हनुमा-
नादि ने भी ले लिये ॥

कपि घोर रव करने लगे,
संग्राम करने के लिये।
निज शत्रु का रण-मध्य,
काम तमाम करने के लिये ॥

सौमित्रि सेना के सहित,
आसन्न अरि के आ गये।
थे खोजते जिसको, उसे वे,
सामने ही पा गये ॥

घननाद को कोदण्ड-मय
लखकर विचार किया यही।
यह वीर सचमुच है समर की
काँपती थर-थर मही॥

—:०:—

१०

दोनों की श्री देख के सोचते थे,
जी में दोनों ओर के शूर सारे।
गोरे काले दिव्य शस्त्रास्त्र वाले,
तेजस्वी हैं तप्त भास्वान जैसे॥

आके दोनों ओर से शक्ति धारी,
बारी-बारी भीति देते धरा को।
कैसे दोनों में जयी कौन होगा
दोनों की श्री आज तो तुल्य ही है॥

बोले थोड़े काल में धीरता से,
मेधावाले राम के बन्धु प्यारे।
सीधी सादी वीर की भारती थी,
बोली से था कर्ण आमोद पाता॥

हे लंका के नाथ के पुत्र, मानी,
तेरे ऊँचे भाल की लालिमा तो।
पृथ्वी में है फैलती आज ऐसे,
लाली जैसे भानु की फैलती है॥

तेरे नीले गात के स्वेद से तो,
बन्धो, ऐसा है मुझे ज्ञात होता।
जैसे काला मेघ कीलाल द्वारा,
वर्षा में है श्यामला कान्ति पाता॥

जैसी शोभा व्योम में चन्द्र की है,
वैसी तेरे शीश के छत्र की है।
तेरे काले कण्ठ की स्वर्ण माला,
नेत्रों को है पूर्ण आनन्द देती॥

तेरी छाती चण्डिका-केसरी-सी,
लम्बी चौड़ी ज्ञात होती मुझे है।
मोटे लम्बे पुष्ट हैं बाहु तेरे,
योधा होते ज्ञात हो देखने से॥

युद्धस्थल में लक्ष्मण और मेघनाद का वार्तालाप

पाता होगा मोद माँ का कलेजा,
तेरे जैसे पुत्र की देख शोभा।
पाता होगा सर्वदा हर्ष जी में,
तेरा नामी विक्रमी जन्मदाता ॥

तेरे लम्बे हाथ में चाप तेरा,
ऐसी शोभा सर्वदा है दिखाता।
न्यारी शोभा साथ नीले घनों के,
जैसे होती जिष्णु के चाप की है ॥

तेरे न्यारे यान के सामने तो,
भू के सारे यान जाते लजा हैं।
योधाओं को है यही ज्ञात होता,
तेजस्वी है विश्व में एक ही तू ॥

तेरी कैसे क्या करूँ मैं प्रशंसा,
तू ने तो है इन्द्र को भी हराया।
तेरी होती शौर्य से है प्रतिष्ठा,
ज्ञानी मानी विक्रमी मानवों में ॥

आके आँखों से तुझे देख के तो,
इच्छा होती युद्ध की ही नहीं है।
कैसे तेरे साथ में मैं लड़ूँगा,
कैसे बाणों से तुझे मैं हतूँगा ॥

ऐसी बातें धीरता से सुना के,
लंकावासी सिंह से विक्रमी को।
बोले आगे वे न संग्राम-भू में,
सर्वव्यापी राम के भद्र भ्राता॥

तेजःशाली भानु जैसे बली की,
नाना भावों से भरी भारती थी।
मानो पुष्पों से छिपा कण्टकों को,
मारा धीरे से किसी ने किसी को॥

—:०:—

११

अवध के पति के सुत की गिरा,
मन लगाकर के उसने सुनी,
प्रवल वीर निशाचर वंश का
फिर लगा चित में यह सोचने ॥

पठित हैं वरवीर कुमार हैं,
समर-पंडित शूर अपार हैं।
सुजन हैं इनमें पुरुषत्व है,
समझते सबके सब तत्त्व हैं ॥

चतुर हैं धृतियुक्ति-निधान हैं,
अहित का रखते बहु ध्यान हैं।
इसलिये कहते इस भाँति हैं,
रिपु-पराक्रम हैं अवलोकते ॥

सरलता इनमें इतनी कहाँ,
कब मिला इनमें अरि प्रेम है।
हृदय में इनके कुछ और है,
वदन से कहते कुछ और हैं ॥

प्रकट में कमनीय स्वरूप हैं,
अति कराल तृणावृत कूप हैं।
परम कोमल किंशुक फूल हैं,
सुमन-सज्जित नाशक शूल हैं ॥

कलश हैं, विषपूर्ण सुवर्ण के,
ज्वलित पावक-पुञ्ज समान हैं।
इसलिये इनसे बचके मुझे,
तुरत ही करना रण चाहिये ॥

—:०:—

१२

कुछ देर रहकर मौन फिर
मन मध्य सोच विचार के।
बोला दशानन पुत्र उनसे,
साथ अति सत्कार के।

जो आप कहते हैं उसे मैं
सत्य ही हूँ मानता।
मैं आप को हूँ परम पावन
सर्वदा से जानता॥

लावण्यधारी ब्रह्मचारी,
आप बुद्धि-निधान हैं।
संसार में अत्यन्त वीर,
पराक्रमी धृतिमान हैं॥

होते हुए आहव-विचक्षण,
प्रज्ञ हैं, मर्मज्ञ हैं।
नीतिज्ञ हैं, वेदज्ञ हैं,
शास्त्रज्ञ हैं सर्वज्ञ हैं।

अतएव मेरी भी परिस्थिति,
ध्यान से सुन लीजिये।
सुन के उसे जैसा बने हे
वीर वैसा कीजिये॥

जय प्राप्त करने के लिये-
आया यहाँ मैं आज हूँ।
इससे अधिक अब आप जैसे,
सूरमा से क्या कहूँ॥

करके प्रतिज्ञा मैं चला हूँ,
आज लड़ने के लिये।
अपने पिता के वैरियों पर,
टूट पड़ने के लिये॥

जो वीर बनते हैं उन्हें,
रण में रुलाने के लिये।
संहार के भूपृष्ठ पर-
सबको सुलाने के लिये॥

करिये वही जिससे पिता की
पूर्ण इच्छा आज हो।
चाहे समर की चाह कुछ भी,
आप को हो या न हो॥

मैं माँगता हूँ भीम रण का,
दान मुझको दीजिये।
चैतन्य होकर तुमुल संगर,
आप मुझसे कीजिए॥

मैं गर्व हूँ करता नहीं
पर क्या करूँ लाचार हूँ।
मैं जनक-आज्ञा-बद्ध हूँ,
करता न फिर भी वार हूँ॥

अतएव मानूँगा नहीं
सन्नद्ध अब हो जाइये।
हे वीरवर, मेरी विनय से,
बद्ध अब हो जाइये॥

ये वचन सुनते ही शिखा में,
आग रघुवर की लगी।
जो शान्ति उनमें राजती थी,
दुम दबाकरके भगी॥

अवधेश-सुत सौमित्रि की,
गम्भीरता जाती रही।
संरम्भ से उनका अरुणतम
हो गया मुख शीघ्र ही।

कहने लगे मन में अहो,
मुझसे हुआ धोका बड़ा।
ममबाण को धिक है अहित
होकर न दो जो गिर पड़ा॥

मैंने हँसी की और यह,
बनता वली वरवीर है।
यह नीच अपने आप को
क्या समझता रणधीर है॥

जलते हुए अयतुल्य एवं
भानु वाल समान वे।
देखे गये उस काल अति
विकराल काल समान वे॥

हिलने लगी विश्वम्भरा,
आकाश भय पाने लगा।
सामर्ष उनको देख के,
संसार थर्राने लगा॥

पीले पड़े चिन्तित हुए,
सैनिक सभी डरने लगे।
आतंक-पारावार में सब,
सूरमें बहने लगे॥

सौमित्रि ने दशशीश-
सुत से यों सगर्व गिरा कही।
ज्यों छेड़ देने से गरजता,
हो कुपित मृगराज ही॥

सत्कार मैंने आज तेरा,
रे अधम, कितना किया।
तुझसे न जाने क्यों हृदय-
का भाव भी बतला दिया॥

सच है सुधामय भारती से,
खल सुधरते हैं नहीं।
क्या चीर पीने पर फणी,
विष त्याग देते है कहीं॥

यदि युद्ध करना चाहता,
कर युद्ध, मैं तैयार हूँ।
तुझसे बता रे नारकी, इससे,
अधिक अब क्या कहूँ॥

है जा रहा निज को बचा,
मम तीव्र भीषण बाण से।
अब हाथ धोवेगा अघी,
तू शीघ्र अपने प्राण से॥

मुझ सिंह से तुझ हरिण को,
कोई बचा सकता नहीं।
रण-मेदिनी को छोड़ तू भग
जा नहीं सकता कहीं॥

सब लोग देखेंगे तुझे,
रक्ताक्त थोड़ी देर में।
पड़ जायगा रण देख तू क्या,
जनक तेरा फेर में॥

वासुकि-सुता से अंग पोषित.
आज सब फट जायँगे।
भूषण-सुसज्जित पुष्ट दोनों
हाथ भी कट जायँगे॥

शर शूल से अत्यन्त तेरी,
दुर्दशा होगी यहीं।
ते समान पिशाच हैं,
मारे कहाँ जाते नहीं ?॥

—

जो जो कहा उसको उन्होंने,
ध्यान से सुन तो लिया।
पर गर्व से घननाद ने,
सौमित्रि को लख हँस दिया॥

संरम्भ एकाएक जिससे,
और उसका बढ़ गया।
मानो अचानक हव्यवाहन-
पुंज में घी पड़ गया॥

घननाद पर कोदण्ड द्वारा,
बाण बरसाने लगे।
वे पैतरा देने लगे निज
शक्ति दिखलाने लगे॥

आकाश को अपने निशित
नाराच से भरने लगे।
उस काल देवों के सहित
देवेन्द्र भी डरने लगे॥

ऐसी दशा अवलोक पीछे,
अरि-अनी हटने लगी।
निर्जीव वीरों से समर की
मेदिनी पटने लगी॥

जो थे छकाते दूसरों को,
सभय वे छकने लगे।
थकते समर में जो न थे,
वे विद्ध हो थकने लगे॥

अत्यन्त कोलाहल मचा के,
लोग दुख पाने लगे।
उस काल उनको देख के
सातंक चिल्लाने लगे॥

होने लगे सब व्यग्र उनके,
बाण जब लगने लगे।
'कैसे बचेंगे प्राण' यह कह,
युद्ध से भगने लगे॥

भगते हुए निज सैन्य को,
जब लख घनध्वनि ने लिया।
आगे सँभल पढ़िये यहाँ,
जो जो वहाँ उसने किया॥

कहने लगा ऐ कायरो,
क्यों शत्रु से हो भागते।
क्यों आज दिन संग्राम को हो,
इस तरह से त्यागते ॥

वैरी बली विकराल पाकर,
भागना क्या चहिये।
वीरो, भला इस भाँति रण को,
त्यागना क्या चाहिये ॥

निज शत्रु से हटना अहो,
क्या तुम सबों का कर्म है।
मुख मोड़ना सच तो कहो,
क्या तुम सबों का धर्म है ॥

कापुरुषता पर तुम सबों की,
कोटिशः धिक्कार है।
तुम पामरों की चाल पर,
लानत करोड़ों बार है ॥

आतंक से जाते बचा के,
प्राण हो मूर्खो, अरे।
भगकर बताओ काल से,
घर पर मरे तो क्या मरे ॥

मेरे महा विकराल बल को,
युद्ध में रुक देख लो।
भिड़कर करो संग्राम अरि के,
अति प्रबल दल को दलो॥

सामर्थ्य अपना दो दिखा,
निज वैरियों के सामने।
होवे विफल वह आह बन,
जो चाह की है राम ने॥

नाराच की वर्षा तथा मम,
शूरता, वर वीरता।
वीरो, रुको देखो भयंकर,
धीरता गम्भीरता॥

पूरा करूँगा तात से जो,
बात मैंने है कही।
लड़ते हुए अरि को धरा-
शायी करूँगा शीघ्र ही॥

घननाद के उपदेश सुन,
सामन्त सब फिरने लगे।
सावेश पहले की तरह,
लड़ने लगे, भिड़ने लगे॥

दोनों दलों में जब परस्पर,
तुमुल रण होने लगा।
तब उभयदल उद्विग्न होकर,
धैर्य निज खोने लगा॥

लंकेश-सुत आकाश पर,
जाकर लगा ललकारने।
कपिवृन्द को शर से वहीं ही
से लगा संहारने॥

मदमत्त दन्ती के सदृश,
क्षण-क्षण लगा चिग्घाड़ने।
कोदण्ड की टंकार से निर्भय,
लगा श्रुति फाड़ने॥

कहने लगा सौमित्रि से,
रण सजग होकर कीजिये।
अब बच नहीं सकते कभी,
भगवान को भज लीजिये॥

सब जान जायेंगे किसे,
संग्राम कहते वीर हैं।
हो जायगी धृति की परीक्षा,
आप यदि रणधीर हैं॥

यह कह स्वनामांकित विशिख,
छोड़े वली घननाद ने।
फुंकार करते नाग से,
उनको चले संहारने॥

पर वर्म से टकरा स्वयं,
विध्वंस तत्क्षण हो गये।
दो चार खण्ड नहीं हुए वे,
टूटकर कण हो गये॥

फिर शत्रु पर सौमित्रि ने,
छोड़ा विशिख आमर्ष से।
आते हुए देखा उसे,
दशशीश-सुत ने हर्ष से॥

विध्वंस करके बाण को,
रज में सरोष मिला दिया।
दिखला दिया निज बाहु-बल,
भीषण समर उसने किया॥

दो नाग करते हैं समर जैसे
परस्पर रोष से।
उन्मत्त दोनों लड़ रहे वैसे,
परस्पर रोष से॥

विकसित पलास-समान वे,
रक्ताक्त-तन देखे गये।
लड़ते हुए दो सिंह के से,
वीर वे लेखे गये॥

दोनों दलों की हो रही थी,
दुर्दशा शरशूल से।
सारी धरा में छा गया था,
ध्वान्त उड़ती धूल से॥

भय से किसी में उस समय,
थी धीरता कुछ भी नहीं।
तन में किसी के था न लोहू
चीरने पर भी कहीं॥

कुछ भी रही आशा न-
मानव-प्राण बचने की कहीं
उस काल सारी मेदिनी में,
था सुखी कोई नहीं॥

रक्षा करो भगवान यह ही,
मन्त्र सबको याद था।
केवल धरो, मारो, भगाओ,
का भुवन में नाद था॥

जन मस्तकों से वह रणस्थल,
शोभता था इस तरह।
मधुमक्षिका-मण्डित महीतल,
शोभता है जिस तरह॥

उस काल शर के जाल से,
पीड़ित हुआ त्रयलोक था।
तिल भर बचा बहते रुधिर
द्वारा न कोई ओक था॥

घननाद ने जाना कि अब,
सौमित्रि निर्बल हो गये।
मेरे निशित नाराच के
आघात से बल खो गये॥

ललकार कर बोला, इसे ही,
युद्ध कहते वीर हैं।
क्यों झलमलाते हैं विकल हैं,
आप तो रणधीर हैं॥

यह कह चलाई शक्ति लक्ष्मण-
का हृदय अवलोक के।
जिससे सभी छोटे बड़े,
अकुला गये सब लोक के॥

सौमित्रि आँखे मूँद कर,
रण की धरा पर सो गये।
मूर्च्छित हुए तत्काल सहसा,
मौन शव-सा हो गये॥

सौमित्रि का यह हाल लखकर,
ताव से की गर्जना।
रण-विजय-मद से मत्त, फिर फिर,
भाव से की गर्जना॥

फिर भागते कपि रीछ दल को।
मारता ललकारता।
लंका नगर की ओर वह,
विजयी चला संहारता॥

—:०:

१३

हलचल मची अमरावती में,
देव सब घबड़ा गये।
सर्वत्र ही होने लगे उत्पन्न,
कष्ट नये नये॥

रोने लगे वानर सभी,
अत्यन्त दुख पाने लगे।
सौमित्रि के हा, शोक से
दृग-नीर बरसाने लगे॥

करने लगे रोदन अमित
जब भिन्न भिन्न प्रकार से
क्षण भी हुए न विमुक्त सब,
जब शोक-कारागार से ॥

होके खड़े उपदेश तब,
मारुति लगे देने वहाँ।
हरने लगे सबके हृदय के,
दुख अनन्त जहाँ तहाँ ॥

कहने लगे कपि-वृन्द से,
रोओ न,कुछ चिन्ता करो।
अपने हृदय की वेदना को
धीर बनकर के हरो ॥

क्या जानते तुम लोग हो,
निर्जीव तन अब हो गये।
आदित्य-वंश-प्रदीप हैं
क्या सर्वदा को सो गए ॥

रघुनाथ-हृदयागार में जो
नित्य करता वास है।
कुल-धर्म के हित के लिए,
जो कर रहा वनवास है ॥

जो संयमी नियमी यमी,
अति विक्रमी धृतिमान हैं।
जो अधिक तेजस्वी तथा,
प्रत्यक्ष ही भगवान हैं॥

जिस दीनबन्धु उदार की हैं
सिद्धियाँ सहचारिणी।
हम लोग आजीवन रहेंगे,
और जिसके हैं ऋणी॥

शुभ नाम को जिसके हृदय में,
लोग जपते नित्य हैं।
जिसके वदन को देखकर,
होते मलिन आदित्य हैं॥

क्रोधान्ध जिसको देखकर हैं
थरथराता काल भी।
कोई कहीं जिस वीर की,
समता न कर सकता कभी॥

वीराग्रणी रघुनाथ के जो,
प्राण का आधार है।
जो शान्ति देने के लिये,
लेता सदा अवतार है॥

उसके लिये आँसू बहाना,
तुम सबों का व्यर्थ है।
निज वेदना को त्यागने में,
जो सदैव समर्थ है॥

अतएव घबड़ाओ न रोओ,
शान्त हो जाओ अभी।
दुख-सिन्धु में ऐसा न बीरो,
चाहिये बहना कभी॥

अवलोक कर वैरी तुम्हें,
उपहास करते हैं अहो।
यह बात लज्जा की नहीं क्या,
'राम राम' तुम्हीं कहो?॥

उपहास का बदला न लोगे,
तो बताओ धीर हो।
धिक्कार है इस शोक पर,
तुम लोग कैसे वीर हो॥

जो धीर हैं उनको कभी क्या
व्यग्र होना चाहिये।
हा, क्षुद्र दुख के वेग से,
इस भाँति रोना चाहिये॥

अज्ञान से कलकल मचा,
मत दीन बनकर दुख करो।
इस शोक-सागर को सहज ही,
बुद्धि नौका से तरो॥

उपदेश से मारुत तनय के,
ताप सब खोने लगे।
उत्साह जल से शोक मल को,
लोग सब धोने लगे॥

बैठे कुशांसन पर कुटी में
राम पर उन्मन हुए।
होने लगे अपशकुन एका-
एक चिन्तित मन हुए॥

—:o:—

१४

बैठे सोच रहे थे राम,
क्यों होता जाता विधि वाम।
मन में व्यथा, वदन में आह,
आज हृदय क्यों रहा कराह।'

जाता क्यों न धरा है धीर,
नयनों से क्यों झरता नीर।
होता जाता हृदय उदास,
कैसा आता है उच्छ्वास॥

क्यों इतना दुख देता कौन,
अन्तर काँप रहा क्यों मौन।
सहजाता न तनिक सन्ताप,
मैंने किया कौन-सा पाप॥

रह-रह उठते कैसे भाव,
मुझसे किससे था न बनाव।
क्यों दुख रहे मुझे हैं घेर,
करती नियति बहुत अन्धेर॥

मेरे काँप रहे हैं पैर,
कोई क्यों करता है वैर।
इसका होता तनिक न ज्ञान,
मेरे जलते हैं अरमान॥

मेरे अन्तर का आनन्द,
होता जाता पलपल मन्द।
तना व्यथा का वितत वितान,
क्या निकलेंगे मेरे प्रान॥

उसी समय अंगद हनुमान,
जाम्वन्त सुग्रीव महान।
मूर्च्छित लक्ष्मण को ले पास,
आये व्याकुल विकल उदास॥

रघुवर देख बन्धु का हाल,
गिरे धरातल पर तत्काल।
लगे विलपने हुए अधीर,
बहे दृगों से झर-झर नीर॥

—:०:—

१५

हा, क्या कहूँ कैसे जगाऊँ,
प्रार्थना किसकी करूँ।
मुँह तक कलेजा आ रहा है,
क्या करूँ, कैसे मरूँ॥

कैसे हृदय को शान्ति दूँ,
किस भाँति दुख अपना हरूँ।
इस शोक-सागर को बिना,
सौमित्रि के कैसे तरूँ॥

हे वीर, तुमको देखकर,
उद्विग्न होता आज हूँ।
तुमको उठाने के लिये,
हा हन्त, तुमसे क्या कहूँ॥

हा, हो रहा हतबुद्धि हूँ,
कुछ भी कहा जाता नहीं।
हा, वेदना-वश धीर तो
मुझसे धरा जाता नहीं॥

उपलब्ध अब हे बन्धु तुमको,
नींद ही होगी नहीं।
हे प्राण, होते नींद के वश,
अल्प भी योगी नहीं॥

होते हुए योगी कहो, फिर
आज क्यों हो सो रहे।
हा हन्त, अपनी ख्याति को,
दृग मूँदकर क्यों खो रहे॥

हे उर्मिला जीवन, अचल पलकें,
जरा खोलो उठो।
हे हे धनुर्धर हाथ में ले लो,
धनुष बोलो उठो॥

मूर्च्छित लक्ष्मण के समीप राम का विलाप तथा सुषेण वैद्य की सलाह--हनुमान का संजीवनी लाना

हे अवध के आधार,
दुख अब तो सहा जाता नहीं।
इस भाँति तुमको देखकर
मुझसे रहा जाता नहीं॥

हे हे धराधर, कब जगोगे,
फूल-सा खिलते हुए।
कब आँख भर सौमित्रि,
देखूँगा तुम्हें मिलते हुए॥

कब तक रुकेगी अश्रुधारा,
दूर कब होगी व्यथा।
धन्वा लिये तुम कब कहोगे,
आज के रण की कथा॥

थर-थर कलेजा काँपता,
तुम मौन हो, मैं क्या कहूँ।
हा, बन्धु-हीन तुम्हीं बताओ,
किस तरह कैसे रहूँ॥

इस रूप में तुमको अहो,
मैंने कभी देखा न था।
अब तक दुखी हे बन्धु,
तुमको नेक भी देखा न था॥

उद्यम जगाने के न मेरे,
आज पूरे हो रहे।
मेरे हृदय के ताप इससे,
आज रूरे हो रहे॥

मैं जी न सकता तुम बिना,
तुम बाल भक्त अनन्य हो।
हे उर्मिलेश, उठो, उठो,
खोलो नयन चैतन्य हो॥

सब ओर के सब लोग रोते,
हा, तुम्हारे शोक में।
हा हन्त, कोलाहल मचा है,
आज तीनों लोक में॥

सोचो तनिक हम लोग दुख
के जाल में कब से फँसे।
हे उर्मिला के नाथ, जागो,
उर्मिला के भाग्य से॥

हे बन्धु, अपने लोचनों को,
खोल दो अब खोल दो।
इतना बुलाता हूँ तुम्हें, तुम
बोल दो अब बोल दो॥

हे वीर, पलकें खोल कर तुम,
एक बार निहार लो।
क्या चाहिये देना तुम्हें
इस भाँति दुःख विचार लो॥

हा हन्त, बन्धु-विहीन कैसे,
अवध जाऊँगा अहो।
माता सुमित्रा को वदन कैसे,
दिखाऊँगा कहो॥

हा, हो गया अब हृदय कैसा,
अय-समान कठोर है।
फटता न यह, मैं क्या कहूँ,
इस पर न चलता जोर है॥

हो मौन कहते कुछ नहीं
पर कष्ट मुझको दे रहे।
तुमने दिये थे मोद जितने,
क्यों उन्हें हो ले रहे॥

देखी न थी हा हन्त, मुख की
खिन्नता इतनी कभी
हा, थी न तुमसे और मुझसे
भिन्नता इतनी कभी॥

मम काय कानन में प्रबल दुख
का अनल है जल रहा।
उसको बुझाने के लिये जल,
आँसुओं का चल रहा॥

पर है न बुझती आग बढ़ती
ही निरन्तर जा रही।
मानो दृगों की धार घी
बन-बन शरीर जला रही॥

हा-हा फटा जाता कलेजा,
अधिक तुमसे क्या कहूँ।
सूखे शमी-सम जल रहा,
चिन्ताग्नि से मैं आज हूँ॥

उस काल राघव को अहो,
तन का न कुछ था ध्यान भी।
आपत्ति में होता न साथी,
ज्ञानियों का ज्ञान भी॥

× × × ×

रह रह करके हा,
वेदना क्यों न होगी।
यह कठिन कलेजा,
क्यों न मेरा फटेगा॥

तन तज निकलेंगे,
क्यों नहीं प्राण मेरे।
जब तनिक कहीं भी,
चैन पाता नहीं हूँ॥

कब सरल किसी को,
बन्धु ऐसा मिलेगा।
अब मिल न सकेगी,
मान्यता बन्धु की क्या?॥

प्रिय जन न मिलेगा,
सौम्य सौमित्रि जैसा।
मुझ सदृश अभागा-
भी न भू में मिलेगा॥

मम उर-सर में जो,
मंजुता से खिला था।
जन - मधुकर चारों-
ओर घेरे जिसे थे॥

अतिशय जिसकी थी,
कीर्ति-सद्गन्ध फैली।
वह सरसिज जैसा,
बन्धु मेरा पड़ा क्यों॥

जब जब जननी को,
देखना चाहता हूँ।
तब तब भर जाते,
अश्रु से नेत्र मेरे॥

जब जब मुझको है,
जानकी याद आती॥
तब तब समझाता,
बन्धु मेरा मुझे था॥

प्रतिदिन जिसको मैं,
चित्त से चाहता था।
लखकर जिसकी श्री,
था सदा मोद पाता॥

वह अति मति वाला,
इन्दु-सी कान्ति वाला।
कब अनुज न जाने,
स्वस्थ होके उठेगा॥

कह कह कर भैया,
मैं बुलाता जिसे था।
जिस पर मुझको था,
सर्वदा गर्व होता॥

समधिक जिसकी थी,
विश्व में भूति फैली।
वह कब विहँसेगा,
शोक मेरा हरेगा॥

अब बहु दुख से है,
अल्प बोला न जाता।
क्षण भर रह जाता-
है न उद्विग्नता से॥

निज अनुज बिना मैं,
मत्त-सा हो गया हूँ।
असु पतित न तो भी,
देह को छोड़ते हैं॥

मम परम सहारा,
जीवनाधार जो था।
लखकर जिसको थी,
तृप्त नेत्राभिलाषा॥

निशि दिन करता था
गेह की साथ चर्चा।
वह कब जनता का,
प्राण प्यारा मिलेगा ॥

मुझ अधम अघी को,
क्या यही देखना था।
फल विपिन पिता के,
भेजने का यही क्या ? ॥

इस तरह विधाता,
क्यों मुझे है जिलाता।
कुछ सुख मिलता है,
क्या उसे कष्ट दे के ॥

नयन कमल मेरे,
क्यों नहीं ध्वंस होते।
अब किस रवि को ये,
देखते ही खिलेंगे ॥

कटकर गिर जाते,
क्यों नहीं कर्ण मेरे।
अब रहकर कैसे,
बन्धु-वाणी पियेंगे ॥

रह रह जब लेता,
साँस हूँ जानता हूँ।
अब फिर न फिरेगी,
साँस मेरी गई जो॥

पर फिर, फिर आती,
अल्प ही दूर जाके।
किस अघ-फल को मैं,
आज यों भोगता हूँ॥

मम अनुज पड़ा है,
चेतना-हीन होके।
तरल हृदय वाली,
मैथिली भी नहीं है॥

अब रह कर भू में,
एक मैं क्या करूँगा।
इस जननि मही का,
भार हूँगा जलूँगा॥

—:o:—

९६

रघुनाथ का दुख देख बोले,
जाम्बवन्त विचार के।
लंका पुरस्थ सुषेन हैं,
वैद्यक-कुशल संसार के॥

अतएव जाओ मारुते, लाओ
उन्हें सम्मान से।
रघुवंश की नैया बचा लो,
डूबती तूफान से॥

हनुमान सुनते ही हवा से,
बात करते उड़ चले।
गति वेग से शर-नाद-मन को
मात करते उड़ चले॥

तत्काल आये वैद्य बोले,
यह महान अनर्थ है।
संजीवनी बूटी बिना इनकी
चिकित्सा व्यर्थ है॥

सुन घोर बात सुषेन की,
कपि-नयन मारुति पर पड़े।
भगवान के गीले विलोचन
भी पवन-सुत पर पड़े॥

रुख जान सबका वायु-सुत ने
राम-पद पंकज छुआ।
फिर वीर का तन नील नभ में,
कौन जाने क्या हुआ॥

निःसीम नभ को चीरते,
खर वायु को ललकारते।
खल कालनेमि छली यती को,
मुष्टिका से तारते॥

पहुँचे अचल पर, पर न जाना,
कौन है संजीवनी।
कपिराज चिन्ता में पड़े,
किस धातु से मम धी वनी॥

पर देर की न विचारणा में,
गिरि समस्त उठा लिया।
रथ रामबाण सदृश किया, तन-
लक्ष्य ओर झुका लिया॥

पर्वत उठाये हरहराते,
आ रहे थे व्योम से।
पहचान पाया भरत ने
उनको न तम के तोम से॥

तृण-बाण से मारा, गिरे,
हा, 'राम राम' पुकार के।
सुन रव भरत व्याकुल उठे,
निज देह-गेह विसार के॥

डगमग चले हा, दैव काम न,
राम के मैं आ सका।
जो कुछ किया दुख ही दिया,
उनको न सुख पहुँचा सका॥

हे बन्धु, तुम हो कौन तुमको,
बार - बार प्रणाम है।
धिक्कार मेरे बाण को जिसका
घृणित यह काम है॥

तुम ज्ञात होते देखने से,
राम-भक्त अनन्य हो।
अनुमान मेरा ठीक हो, तुम,
राम-धन हो, धन्य हो॥

हे कपि वरेण्य क्षमा करो,
अनजान के अपराध को।
भू से उठो, पूरी करो,
आकुल-हृदय की साध को॥

हनुमान बोले, मत दुखी हो,
स्वस्थ हूँ मैं हूँ सुखी।
सानन्द आशीर्वाद दें, है-
आप की धी बहुमुखी॥

जैसे हृदय के सरल हैं वैसे,
पराक्रम के धनी।
सुनता जिसे था देखता, मति,
भक्ति के रस में सनी॥

क्यों राम भजते आप ही को
आज ज्ञात हुआ मुझे।
प्रभु-हीन भी क्या है निरापद
राज ज्ञात हुआ मुझे॥

फिर कह विपिन का हाल-
आज्ञा ली हिली काँपी रसा।
झुक विनत अभिवादन किया,
गिरि ले उड़े तूफान - सा॥

बहु देर होने से उधर थे,
राम व्याकुल हो रहे।
सन्तप्त हो गम्भीरता कुल
धीरता कुल खो रहे॥

कपिराज इतने में वहाँ,
पहुँचे जहाँ सब थे दुखी।
फिर तुरत वैद्य-उपाय से,
सब हो गये अतिशय सुखी॥

सौमित्रि सिंह समान सोकर,
मुस्कराते जग गये।
रामादि के उर-ताप जाकर,
शत्रु-उर से लग गये॥

सौमित्रि पर सानन्द सुर सब,
सुमन बरसाने लगे।
उत्साह से जय बोल कर,
आमोद कपि पाने लगे॥

आदित्य वंशादित्य का उर,
दुःख सब खोने लगा।
संग्राम करने का उन्हें,
उत्साह फिर होने लगा॥

करने लगे निश्चय परम रिपु-
को रुलाने के लिये।
घननाद को संहार कर,
रण में सुलाने के लिये॥

मध्याह्न के भास्वान सम,
उस काल वे लेखे गये।
अतिक्रोध करने से महा-
विकराल-तनु देखे गये॥

जय के लिये वर विक्रमी,
पीछे कभी हटते नहीं।
यमराज के भी सामने,
क्या वीर हैं डटते नहीं?॥

सौमित्रि ने किस भाँति मारा,
मेघनाद समर्थ को।
पाठक, पढ़ें, आगे, विचारें,
भीम-रण के अर्थ को॥

—:o:—

१७

बैठे हुए थे रामलक्ष्मण,
वेदिका के डाभ पर।
था रीछ वानर व्यूह विह्वल,
दिव्य दर्शन लाभ पर॥

जग-जीव-माया के विषय की,
बात कुछ थी चल रही।
सबके हृदय में ज्ञान की थी
ज्योति जगमग जल रही॥

अनुकूल अवसर जानकर,
जिज्ञासु बैठा सामने।
भगवान से करबद्ध पूछा
जाम्ववन्त महान ने॥

यह सृष्टि कैसे हो गई,
इसका प्रयोजन क्यों हुआ।
इन पंचतत्त्वों का मनोहर,
मधुर योजन क्यों हुआ।

माना कि सुन्दर सत्य है तो,
मोह का पाखण्ड क्यों।
सब एक ही तो हो गया है,
खण्ड-खण्ड अखण्ड क्यों॥

जब एक ही है तत्त्व तब,
यह युक्ति होनी चाहिये।
पाई किसी ने मुक्ति सबकी,
मुक्ति होनी चाहिये॥

व्यवहार त्वमहं का नहीं तब,
मोक्ष किसको बन्ध है।
दो देखता है एक को क्या,
विश्व सारा अन्ध है॥

क्या आग पानी दो नहीं ?
क्या ज्ञेय ज्ञाता दो नहीं ?
क्या दृश्य द्रष्टा एक ही ?
क्या ध्येय ध्याता दो नहीं ?

अद्वैत से तो आप ही हैं,
जानकी भी राम भी।
जब चाँद सूरज दो नहीं तब,
सुबह भी है शाम भी॥

अद्वैत का न रहस्य खुलता,
बन्द आँखें खोल दें।
हैं आप कैसे मित्र रावण,
शत्रु क्यों है बोल दें॥

है द्वैत-ज्ञान परन्तु इससे,
दुःख की न निवृत्ति है।
चिर सुख मिले कैसे मिलन-
की ओर लोक-प्रवृत्ति है॥

सम्बन्ध होता द्वैत से ही,
भक्त का भगवान से।
कोई विधायक बोलता है,
नियमबद्ध विधान से॥

हो स्वप्न चाहे सत्य जग की,
द्वैत ही से प्रीति है।
कोई अकेला रह न सकता,
लोक की यह रीति है॥

क्या द्वैत क्या अद्वैत द्वैता-
द्वैत का क्या खेल है।
आश्चर्य है साधर्म्य से,
वैधर्म्य का भी मेल है॥

हम लोग आकुल हो उठे हैं,
भेद बतला आप दें।
कैसे तरें भव-सिन्धु रहकर
मौन मत सन्ताप दें॥

सुन प्रश्न हँसकर राम बोले,
प्रश्न अतिशय रम्य हैं।
जितने मनोहर दिव्य उतने,
ही दुरूह अगम्य हैं॥

इन गहन प्रश्नों के दिये,
उत्तर बुधों ने लोक को।
सत्यांश सब में कुछ न कुछ,
पर हर सके क्या शोक को?

अनुमान तर्क न खोलता-
ऐसी बँधी यह गाँठ है।
पढ़ते सभी अथ इति न पाते,
यह सनातन पाठ है॥

मन की न मति की गति वहाँ तक,
दूर से भी दूर है।
केवल वहाँ अनुभव पहुँचता,
सूर भी मजबूर है॥

जिस तरह निश्चल सिन्धुजल में,
उतरता राकेश है।
होता प्रकाशित अम्बुनिधि का
बाह्य - अन्तर्देश है॥

उस तरह आदिम चित्त में थी,
ब्रह्म की छाया कभी।
युग-शान्त चित सुख भोगता,
जन्मी न थी माया अभी॥

जैसे जलधि के कम्प से-
होता मयंक अनेक है।
वैसे चपल चित हो उठा,
अगणित गया बन एक है॥

ज्यों-ज्यों हिला फँसता गया,
अज्ञान से घिरता गया,
गुण में फँसा वह जीव,
निर्गुण तत्त्व ब्रह्म कहा गया ॥

सुख दुःख अनुभव जीव को है,
ब्रह्म तो अविकार है।
यह जीव अपने रूप को भूला,
यही संसार है॥

जिस दिन स्वयं को जान लेगा,
फिर वही बन जायगा।
अज्ञान बन्धन खोलकर,
अक्षर सही बन जायगा ॥

जिस कर्म का परिणाम शुभ हो,
वह सनातन धर्म है।
जिस कर्म का फल हो अशुभ
वह विश्वबन्ध अधर्म है॥

सत तक पहुँचने के लिये
सद्धर्म ही सोपान है।
सद्धर्म ही उस सत्य निर्गुण,
ब्रह्म का वरदान है।

पर कर्म करने से प्रथम तुम,
कर्म को पहचान लो।
तुम रोककर अपनी तृषा को,
धर्म की विधि जान लो॥

जो हैं अधर्मी नीच उनको,
दंड देना धर्म है।
दुष्कर्म-निरतों को क्षमा-
करना महा दुष्कर्म है॥

है दण्ड ही उन पर कृपा,
संहार आर्शीवाद है।
मिलता उन्हें दुख के तिमिर में,
ब्रह्म-ज्योति प्रसाद है॥

सुन राम की वाणी सुमन सब,
देव बरसाने लगे।
कपि रीछ भी जय बोलकर,
आनन्द दरसाने लगे॥

आतुर विभीषण व्यग्र तब तक,
आ गया कुछ वृत्त ले।
भगवान के पद पर गिरा
आतंक-विह्वल चित्त ले॥

बोला सभय रघुकुल-तिलक,
घननाद अपराजेय है।
आधार रावण का तनय-
रावण धनी आधेय है॥

वश में किया है आत्मबल से,
तारकों के देश को।
घननाद ने जीते सकल-
वैभव मिला लंकेश को॥

यम अग्नि वरुण कुबेर घुलते
हैं सदा अवसाद से।
हर का हृदय भी काँपता घन-
नाद के घननाद से॥

इतना बली कि हिला न सकता,
बाल तक भी काल है।
भयभीत रहता इन्द्र पुंजी-
भूत अग्नि-ज्वाल है॥

दिग्दन्तियों का दन्त-दल।
सीना रगड़कर तोड़ता।
कोई अगर दिग्पाल बोला-
तो झगड़ कर तोड़ता॥

लंकेश में क्या शक्ति उसकी,
शक्ति ही लंकेश है।
उसने विजय पाई न जिसपर
कौन-सा वह देश है॥

सौमित्रि को मारा सही में
आज उसकी धूम है।
रण कर चुके हैं आपको भी,
वीरवल मालूम है॥

तल से अध:पाताल तक,
भू से गगन के छोर तक।
सबने महत्ता मान ली इस-
ओर से उस ओर तक॥

पौलस्त्य-तन में काम करता
बल उसी बलधाम का।
होता न वह तो बाजता
डंका न लंका नाम का।

अनिवार्य वैसे ही प्रबल है
वह भयानक गौरवी।
उसकी सती जब तेज देती,
अजित होता और भी॥

तप से कमाया तेज, तप से,
ही कमाई शक्ति है।
तप से तपी-सी भूति पाई,
इष्ट-पद-अनुरक्ति है॥

वह वीर जेता यज्ञ करता,
धूम से भू-नभ मिला।
मख से सुगन्धित हो रहा है,
आज अद्रि निकुम्भिला॥

यह मान लें घननाद का यदि,
यज्ञ पूरा हो गया।
तो मिल न सकती जानकी
बल आप का दल खो गया॥

हम लोग मिलकर भी लड़ें,
तो भी न मारा जायगा।
उलटे हमारे ही रुधिर का–
बह पनारा जायगा॥

कपि भालुओं को मार जिसने,
कर दिया बरबाद है।
असमथ बाँधा आप को,
क्या नागपाश न याद है?

ललकारता था ध्वंस कर
उस दिन वही घननाद है।
यह जान लें वह वीर अपरा-
जेय मख के बार है॥

अतएव उसपर यज्ञ में ही,
टूट पड़ना चाहिये।
यदि लड़ पड़े तो धीरता के
साथ लड़ना चाहिये॥

इस तरह त्रस्त निरस्त्र होगा,
और मारा जायगा।
जब शस्त्र लेगा तब न वह
शिरमौर मारा जायगा॥

रणनीति में यह अघ नहीं है,
और यह न अनर्थ है।
उस सूरमा को मारने का
और नय सब व्यर्थ है॥

सुनकर विभीषण की गिरा
क्षण मौन राघव हो गये।
उठने लगे उनके हृदय में
न्याय - भाव नये-नये॥

कुछ देर सोच विचार कर
भगवान ने यह तय किया।
रखना उचित है भक्त का हठ
नय यही निश्चय किया॥

फिर मुस्कराते बन्धु से
भगवान बोले ठीक है।
कहते विभीषण सत्य सचमुच,
वह बड़ा निर्भीक है॥

इससे सदल बल जा दशानन,
के तनय का वध करो।
हे बन्धु, धनु सायक सँभालो,
नाश लंका-मद करो॥

हनुमान अंगद नील नल
हे जाम्बवन्त कपीश हे।
हे हे विभीषण वानरों के,
धीर वीर अनीश हे।

सब लोग मेरे बन्धु के ही,
साथ रहना युद्ध में।
रणदक्ष, पर है बाल, दायाँ,
हाथ रहना युद्ध में॥

यह इसलिये कहता कि
रावण का तनय रणधीर है।
हटना न रण में जानता
दुर्द्धर्ष अति गम्भीर है॥

हे तात, जाओ दैव पर
अनुकूल होता ज्ञात है।
जयश्री मिलेगी देख लो
अनुकूल चलता वात है॥

भगवान का आदेश शिर पर
रख उठे रघुकुल धनी।
युद्धार्थ व्याकुल हो उठे,
फड़की भुजाएँ भ्रू तनी॥

रघुनाथ सम्मुख हो खड़े,
बोले चरण छू भाव से।
हे नाथ, जीतूँगा समर,
पादारविन्द - प्रभाव से॥

घननाद क्या यदि काल भी,
मेरा करेगा सामना,
तो आज मारूँगा उसे
ऐसी प्रबल है भावना॥

यदि मैं न जीत सका उसे,
यदि मैं न मार सका उसे।
तो शौर्य्य पर धिक्कार है,
यदि मैं न तार सका उसे॥

घननाद को असमर्थ हो
यदि दण्ड दे सकता नहीं।
तो आज से मैं फिर कभी
कोदण्ड ले सकता नहीं॥

हे नाथ, आशीर्वाद दें अब,
कुछ न कहना चाहता।
घननाद-वध के पूर्व बिल्कुल,
मौन रहना चाहता॥

यह कह सरोष निकुम्भिला की
ओर रघुनन्दन चले।
सुग्रीव हनुमानादि भी
कर राम-पद-वन्दन चले॥

—:o:—

१८

सौमित्रि दल के साथ पहुँचे,
यज्ञ में घननाद के।
देखे सकल होता मगन, मारे
अमित आह्लाद के॥

मख के धुएँ से उड़ रही,
सद्गन्ध चारों ओर थी।
शाकल्य चरु खा, घी दही पी,
आग रंग-विभोर थी॥

पढ़ता मिलाकर कण्ठ वैदिक,
मन्त्र होतृ-समाज था।
स्वाहा स्वधा के उच्च रव से
गूँजता गिरिराज था॥

सौमित्रि की आँखें न रर
टिकतीं किसी सामान पर।
मोहित न होतीं ठहरतीं मख
के ललाम विधान पर॥

वे व्यग्र हो हो खोजतीं थीं,
मेघनाद समर्थ को।
जिसके लिये तरकस कसा
उस विघ्न रूप अनर्थ को॥

सौमित्रि ने देखा अचानक,
लाल आँखें रुक गईं।
घननाद को पहचान कर कुछ
याद करके झुक गईं॥

पर दूसरे ही क्षण शरासन-
से शरों की वृष्टि थी।
जिस ओर बैठा शत्रु था उस-
ओर सबकी दृष्टि थी॥

विष से बुझी बाणावली से,
सूरमा घिरने लगा।
तत्काल उसका रक्त मख की-
भूमि पर गिरने लगा॥

होता - पुरोहित-देह से
विशिखावली रुकने लगी।
छूटी रुधिर की फाँक तो
यज्ञाग्नि भी बुझने लगी॥

किरणावली के बीच शोभित,
बाल रवि होता यथा।
शोभित कराल शरावली में
वीर होता था तथा॥

घननाद ने देखा उसी-
सौमित्रि को शर छोड़ते।
उस दिन जिसे देखा समर में
हारकर दम तोड़ते॥

मारे- घृणा से फेर मुख
आहुति पुनः देने लगा।
वह मेघनाद समर्थ यज्ञा-
नन्द फिर लेने लगा॥

यजमान - होता - कुल-पुरोहित,
यज्ञ में मारे गये।
कपि - भालुओं के हाथ से,
सब लोग संहारे गये॥

केवल वहाँ अमरावती का
अमर जेता रह गया।
प्रज्वलित कम्पित अग्नि-
मुख में हव्य देता रह गया॥

कपि - रीछदल के शस्त्र अब,
घननाद पर गिरने लगे।
बहते रुधिर की धार में मख-
पात्र सब तिरने लगे॥

इंगित विभीषण ने किया,
सौमित्रि और प्रबल हुए।
उसको जलाने के लिये,
धधके असह्य अनल हुए॥

ज्या खींच मारा बाण बल से,
तिलमिला औंधे गिरा।
शरविद्ध त्रेता का विजेता,
कीश - रीछों से घिरा॥

घननाद क्षण भर बाद गर्जन,
कर उठा ललकारता।
रव से कँपाता यूथ को,
सौमित्रि को धिक्कारता

अध्वर किसी का ध्वंस करना,
यह कहाँ की वीरता।
यजमान होता से समर
करना कहाँ की धीरता॥

इस तरह छल से युद्ध कोई,
वीर तो करता नहीं।
इस तरह धोके से समर,
रणधीर तो करता नहीं॥

सम्मुख समर में हारने पर,
यह नया संग्राम है?
योधा न कर सकता कभी,
इतना घृणास्पद काम है॥

बल का पता जब लग गया तब,
जीतने की यह क्रिया।
ऐसे अधम रण के लिये क्या,
मत विभीषण ने दिया?

जीतें मुझे पर आपकी इस
जीत में ही हार है।
रघुवंश की रणनीति पर,
धिक्कार सौ-सौ बार है॥

इस कार्य से रघुवंश में जो,
कालिमा है लग रही।
उसको न घन भी धो सकेगा,
भारनत होगी मही।

घननाद की सुन बात धनु पर,
वीर का शर रुक गया।
क्षण भर मही की ओर उनका
आप ही सर झुक गया॥

यह देख चिल्लाकर विभीषण
ने कहा मत चूकिये।
अवसर न जाने दें इसे शर-
के अनल से फूँकिये॥

सौमित्रि फिर कोदण्ड से
अंगार बरसाने लगे।
उस मूक होता पर सकल
सामर्थ्य दरसाने लगे॥

मेरा कठिन अपमान होगा,
कुछ न कहना चाहता।
भगवान् की लीला समझकर,
मौन रहना चाहता॥

वह प्राणनाथ सुलोचना का
शक्ति रहते मिट गया।
आश्चर्य मख के देवता में
भक्ति रहते मिट गया॥

कर में अवाक् स्रुवा लिये,
मख भूमि में मारा गया।
सौमित्रि के नाराच से,
घननाद संहारा गया॥

सौमित्रि को तो यश मिला,
पर काल की भी चाल थी,
रघुवंश-मणि के हाथ उसको,
मार मौत निहाल थी॥

म्रियमाण मरता है बहाना,
ढूँढ़ लेता काल है।
पाठक, न कुछ सोचें यही,
घननाद का भी हाल है॥

यह देख सुरपुर के नगारे,
धूम से बजने लगे।
सौमित्रि पर बरसा सुमन,
निर्जर-निकर भजने लगे॥

आमोद-धारा बह चली,
तीनों भुवन में शीघ्र ही।
जय के अलौकिक नाद से
गूँजी मुदित सारी मही॥

—:o:—

११

घननाद का शव छोड़कर
मखभूमि में ही, कपि चले।
ललकारकर बोले अभय
जय विजयदे, जय मंगले,॥

कपि- रीछ राम समीप आये
बोलते जय हर्ष से।
सौमित्रि विह्वल हो रहे थे,
विजय के उत्कर्ष से॥

भगवान के पद छू सभी ने
प्रीति से वन्दन किया।
मंगल समझकर राम ने भी,
अमित अभिनन्दन किया॥

सब जानते भी राम बोले
'युद्ध का क्या वृत्त है।
कोई मुझे जल्दी बता दे
व्यग्र होता चित्त है'॥

भीषण विभीषण ने कहा—
'सौमित्रि ने पाई विजय।
रघुवंश-मणि के हाथ अपने
आप ही आई विजय'॥

जब यह सुना कि विजय मिली
घननाद पर, बलधाम ने।
तब पीठ ठोंकी बन्धु-शिर पर,
हाथ फेरा राम ने॥

सौमित्रि-मुख की ओर अपलक
देखते ही रह गये।
बोले, मगर पहले हृदय के
भाव दृग से बह गये॥

'तुमने विजय पाई तुम्हारी
मैं बड़ाई क्या करूँ।
तुमने लड़ाई की कठिन अब
मैं लड़ाई क्या करूँ॥

मैं जानता था मार सकते हो
तुम्हीं घननाद को।
था व्यग्र सुनने के लिये निज
बन्धु-जय संवाद को॥

पाकर तुम्हें मैं आज जगती
जन्म का फल पा गया।
उठता हृदय में था विजय के
प्रश्न का हल पा गया'॥

यह सुन बड़ाई राम से
सौमित्रि-चरणों पर गिरे।
संकुचित-तन गद्गद हुए
फिर आँसुओं में दृग तिरे॥

बोले चरण छू-छू 'प्रभो,
मैंने विजय पाई नहीं।
यह तो कृपा का फल कहीं से
आपदा आई नहीं॥

जिस पर कृपा हो आप की
वह जग-विजेता हो गया।
उसको न कुछ दुर्लभ धरा
का धीर नेता हो गया॥

जिसको जताना चाहते वह
जान पाता आप को।
जिसपर दया होती वही
पहचान पाता आप को॥

शाश्वत चराचर से अलग
अपरा-परा से भी परे।
शैशव पहुँच पाता नहीं
यौवन-जरा से भी परे॥

किंचित बिना आदेश के भू
से न उड़ती धूल है।
गाती न है मधुपावली
हँसता न कोई फूल है॥

पहले अलख-अव्यक्त में
यह मग्न दृश्य प्रपञ्च था।
कोई विधान न था कहीं
कोई न लीला-मञ्च था॥

इस रूप में फिर जग हुआ,
इसके विधाता आप ही।
सबके सदृश माता पिता सब
काल त्राता आप ही॥

हे योग के आद्यन्त ज्ञाता
आपकी जय हो प्रभो!
दिक्काल आत्मा रूप धाता,
आपकी जय हो प्रभो!

जो हैं सभी के ईश उनके
भी सनातन ईश हैं।
जिस एक से अगणित हुए,
वह आप ही जगदीश हैं।

अवकाश में फैले हुए हैं,
आदि-अन्त न आप का।
एकत्र पुञ्जीभूत भी, क्या
है ज्वलन्त न आप का॥

कर अस्मिता को दूर योगी
निर्विकल्प समाधि में।
प्रत्यक्ष करते आप को
एकान्त ध्यान गताधि में॥

शिव सत्य सुन्दर ब्रह्म चिद्घन
अपरिणामी आप ही।
अव्यक्त अक्षर एक अद्वय
अथकगामी आप ही॥

हे उर्द्ध्वमुख दिङ्मुख अधोमुख
आपकी जय हो प्रभो!
हे आदि कारण विश्वतोमुख,
आपकी जय हो प्रभो!

गा गा थके सस्वर सनातन
वेद पार न पा सके।
मैं अल्प क्या महिमा कहूँ
जब विधि पता न लगा सके॥

हे निर्विकार, त्रिकालदर्शी
अप्रमेय, अजेय हे,।
हे विश्वरूप, अरूप, अक्षय,
ज्ञान, ज्ञाता, ज्ञेय हे।

निःशंक संचालक निरामय,
आपकी जय हो प्रभो!
निर्गुण, नियामक, गुरु गिरामय
आपकी जय हो प्रभो!

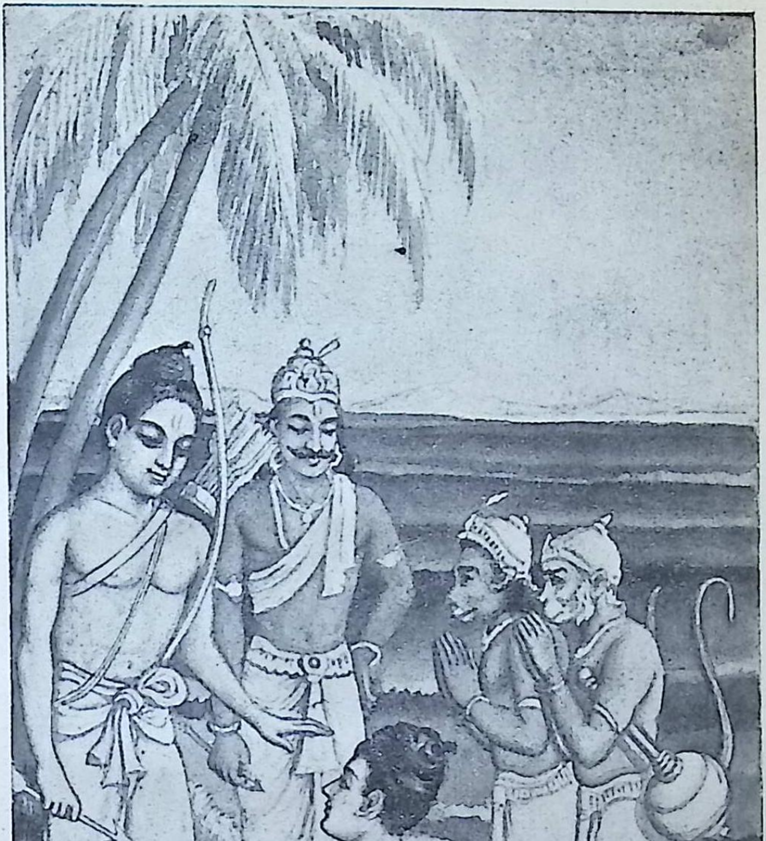

लक्ष्मण द्वारा रामचन्द्र की स्तुति

पृथ्वी, चरण, दिग्बाहु, मस्तक
अन्तरीक्ष अनूप है।
तप-सत्य, बल है, देवता, तन,
धर्म-कर्म स्वरूप है॥

हैं नयन दोनों, चाँद-सूरज,
चाँदनी, कल हास है।
जल-स्वेद, पावक, तेज मारुत
आप का निःश्वास है॥

संस्कार निष्ठा, वेद, आगर,
आपकी जय हो प्रभो!
है शारदा, जिह्वा, उजागर,
आपकी जय हो प्रभो!

मन पर प्रभाव अभाव का ले,
मैं अविद्या से घिरा।
अन्तर्नयन खोलें बहुत गिर-गिर
उठा, उठ-उठ गिरा॥

कर लीन लेता है स्वयं में
प्राण-पवन अपान को।
शशि, प्राण को, भास्वान,
शशि को, ब्रह्म उस भास्वान को॥

वह ब्रह्म शासक आप ही हैं
आपकी जय हो प्रभो!
सबके प्रकाशक आप ही हैं,
आपकी जय हो प्रभो!

संसार-सागर से बहुत ऊपर,
सनातन हंस है।
ऊपर उठा न रहा मगर वह,
एक अपना अंस है॥

वह भी उठा ले तो न बन्धन,
मोक्ष का झगड़ा रहे।
मिट जाय तम, कोई कहीं,
छोटा रहे न, बड़ा रहे॥

वह हंस शाश्वत आप ही हैं,
आपकी जय हो प्रभो!
वह अंस जाग्रत आप ही हैं,
आपकी जय हो प्रभो!

उद्भव निधन से दूर हैं, फिर
प्रश्न क्या है मोक्ष का।
सन्तत रहस्य खुला हुआ—
प्रत्यक्ष और परोक्ष का॥

जग की विषमता बाँधती,
देहाभिमानी व्यक्ति को।
छू भी न छाया तक सकी,
वह आप जैसी शक्ति को॥

सबसे परे, सबको समेटे,
आपकी जय हो प्रभो!
निर्मल-हृदय में मौन लेटे,
आपकी जय हो प्रभो!

जो है नहीं जो है सभी कुछ,
आप में ही लीन है।
निशिदिन सजग हैं आपकी,
यह प्रकृति नित्य नवीन है॥

गति अगति सत्यासत्य भी हैं,
सूक्ष्म भी हैं स्थूल भी।
हैंकुछ न पर सब कुछ समय पर,
याद भी हैं, भूल भी॥

हे भिन्न रूप अभिन्न स्रष्टा,
आपकी जय हो प्रभो।
हे दृश्यरूप अदृश्य द्रष्टा,
आपकी जय हो प्रभो!

आकार-हीन अरूप ही—
साकार मेरे सामने।
व्यापक अजन्मा ब्रह्म ही,
अविकार मेरे सामने॥

सौभाग्य है यह पुण्य का फल,
दिव्य दर्शन पा रहा।
मैं आपके ही सामने हूँ,
आपका का यश गा रहा॥

जो कुछ कहा, वह कुछ नहीं, मैं
कुछ नहीं हूँ जानता।
कोई इयत्ता ही नहीं, केवल
यही हूँ जानता॥

हे एक अनुपम हंस जय जय,
आपकी जय हो प्रभो!
रघुवंश के अवतंस जय जय,
आपकी जय हो प्रभो!

भर नयन वानर-भालु बोले,
आपकी जय हो प्रभो!
भगवान के श्रद्धालु बोले,
आपकी जय हो प्रभो!

उड़ मधुप हिल जल-जात बोले,
आपकी जय हो प्रभो !
डोले विटप के पात बोले,
आपकी जय हो प्रभो !

नभ से अमर्त्य अशेष बोले,
आपकी जय हो प्रभो !
नीचे धरा से शेष बोले,
आपकी जय हो प्रभो !

क्रमबद्ध तीनों काल बोले,
आपकी जय हो प्रभो !
दिशि-दिशि मुझे दिग्पाल बोले,
आपकी जय हो प्रभो !

नक्षत्र शशि के साथ बोले,
आपकी जय हो प्रभो !
रथ रोककर दिननाथ बोले,
आपकी जय हो प्रभो !

गूँजा धरातल से गगन तक,
आपकी जय हो प्रभो !
जय आपकी जय हो प्रभो, जय
आपकी जय हो प्रभो !

...wari's Sri Sankaracharya Sansk... Mahavidyalaya * Bhargava Vid...
583